प्रत्ययवाद– Idealism

प्रत्ययवाद भौतिकवाद के बिल्कुल विपरीत सिद्धान्त है। इसके अनुसार विश्व का परमतत्व जड़ नहीं चेतन अथवा आध्यात्मिक है। समस्त सृष्टि की आधारभूत सत्ता, चेतना, प्रत्यय, आत्मा अथवा मन है। संसार में जो कुछ है वह चेतना का प्रकाश या अभिव्यक्ति मात्र है। प्रत्ययवाद में Idea (प्रत्यय) शब्द, चेतना अथवा आत्मा के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

1. डा0 दास गुप्त के अनुसार– वर्तमान प्रत्ययवाद का मुख्य कर्तव्य यह मालुम पड़ता है कि विश्व का परम या मूलतत्व आध्यात्मिक है।
2. प्रो0 कैम्पस्मिथ की मान्यता है कि– "वे सभी पद्धतियां जिनके अनुसार विश्व प्रक्रिया में दिशा निर्धारण में आध्यात्मिक मूल्यों का हाथ रहता है, प्रत्ययवादी है।"
3. प्रो0 यूंइग के अनुसार–" प्रत्ययवाद के अनुसार कोई भौतिक पदार्थ चेतन (अनुभव) के बाहर नहीं रह सकता।"
4. एक अन्य परिभाषा के अनुसार– प्रत्ययवाद वह दार्शनिक सिद्धांत है जिसके अनुसार जड़ द्रव्य अथवा देशकाल गूट, घटना समष्टि यथार्थ रूप पर विचार करते समय उसके साथ आत्मतत्व पर जो किसी अर्थ में उसका आधार है विचार करना आवश्यक हो जाता है।

इस प्रकार अंतिम दोनों परिभाषाओं का तात्पर्य यह है कि बिना आत्मतत्व की कल्पना के भौतिक जगत अधूरा रहता है। प्रो0 कैम्पारमय की परिभाषा उन दर्शन पद्धतियों के लिए लागू होती है जिन्हें हम विश्व की प्रयोजनवादी व्याख्या कहते है उसके अनुसार विश्व प्रक्रिया आध्यात्मिक मूल्यों अथवा आध्यात्मिक पूर्णता की प्राप्ति के लिए क्रमशः पूर्णत्व की ओर बढ़ रही है। प्लेटो, हेंगल तथा लाईवलित्ज की दर्शन पद्धतियां इसी अर्थ में प्रत्ययवादी है।

डा0 दास गुप्त की परिभाषा विशेष रूप से भारतीय प्रत्ययवाद का वर्णन प्रस्तुत करती है। जिसमें अद्वैत वेदान्त, विज्ञानवाद व शुन्यवादी विचारधाराए मुख्य है।

तीसरी परिभाषा–(प्रो0 यूइंग) आधुनिक यूरोपीय प्रत्ययवाद विशेषकर ब्रिटिश प्रत्ययवाद के स्वरूप पर लागू होती है। इस परिभाषा का प्रधान लक्ष्य, ब्रेडले बोसों के प्रत्ययवाद है जिस पर क्रमशः कान्ट और हेगल का विशेष प्रभाव पड़ा है।

इस प्रकार प्रत्ययवाद की उपरोक्त परिभाषायें उसकी विशिष्ट दृष्टिकोण से व्याख्या करती है। इसका प्रमुख कारण यह है कि जहाँ प्रत्यवादी दर्शनों में समानतायें है वही कुछ सीमा तक विभिन्नतायें भी है। विशेषकर जब भारतीय और यूरोपीय प्रत्यवाद की तुलना करने लगते है तो ये भिन्नतायें काफी स्पष्ट हो जाती है। फिर अद्वैतवेदान्त व प्लेटो के प्रत्ययवाद तथा बौद्ध व ब्रेडले हेगल आदि के प्रत्ययवाद में काफी साम्य देखने को मिलता

है। जहाँ अद्वैत वेदान्त के अनुसार जगत ब्रहम का विवर्त अथवा आभास मात्र है। वही प्लेटो के अनुसार– दृश्यमान जगत वास्तविक जगत की अनुकृति मात्र है। जिस प्रकार हेगल व ब्रेडले ने अनुभव जगत की धारणाओं अथवा व्यक्तियों को विरोधग्रस्त कहा है उसी प्रकार बौद्ध नार्गाजुन ने भी विश्व के पदार्थो को सारहीन कहा है।

सारांशतः प्रत्ययवाद की सामान्य विशेषतायें निम्न हैः–

1. परमसत्ता मन से अथवा प्रत्यय है। विश्व का मूलतत्व चिदात्म रूप अथवा आध्यात्मिक है और यही चिदात्म तत्व विश्व को नियंत्रण करता है। यदि कोई पदार्थ भौतिक मालुम पड़ता है तो वह आभास अथवा प्रतीत (Appearance) मात्र है यथार्थ नहीं प्रत्ययवाद की धारणा है कि– जो भौतिक तत्व की कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं है। आत्मा ही एक मात्र परम तत्व है और भौतिक पदार्थ उस आत्मा के विवर्त है।
2. प्रत्ययवाद, यांत्रिकवाद(Mechanism) का विरोधी है। क्योंकि विश्व प्रक्रिया को वह निष्प्रयोजन मानता है। विष्व को मूलतः आध्यात्मिक मानने के कारण आध्यात्मिक मूल्यों को वह यथार्थ मानता है और विश्व प्रक्रिया को सप्रयोजन।
3. प्रकृति तथा मनुष्य में एक सामंजस्य है और मानव बुद्धि एवं विश्व प्रक्रिया में अभिन्न तादात्म्य है अर्थात विश्व प्रक्रिया आत्मा अथवा मन का अभिव्यक्तिकरण है।
4. प्रत्ययवाद, भौतिकवाद का घोर विरोधी है। भौतिकवादियों ने जगत के विकास को यांत्रिक स्वीकार करके जीवन और मन को जड़ द्रव्य से ही विकसित माना है। लेकिन प्रत्ययवादियों का मत है कि विश्व प्रक्रिया निष्प्रयोजन अनायास अथवा कार्यकर ही है और सृष्टि का विकास किसी प्रयोजन की प्राप्ति की ओर उन्मुख है। अतः विश्व प्रक्रिया प्रयोजन मूलक तथा आध्यात्मिक है न कि यांत्रिक और भौतिक। भौतिकवाद में परमतत्व को अचेतन और भौतिक माना गया है किन्तु प्रत्ययवाद में चेतन और अभौतिक प्रथम के अनुसार चेतन जगत आतात्विक है जड़ द्रव्य का परिणाम है किन्तु दूसरे के अनुसार भौतिक जगत अतात्विक है। चैतन्य का परिणाम है।

प्रत्ययवाद की समर्थक युक्तियां– प्रत्ययवाद आधार तत्व चेतन अथवा आध्यात्मिक है। विश्व जो हमें भौतिक प्रतीत है यथार्थतः अभौतिक है। इसी आधार अथवा मान्यता को विभिन्न युक्तियों द्वारा प्रत्ययवादियों ने सिद्ध करने की चेष्टा की है।

1. सर्वप्रथम बर्फले ने ज्ञान मीमांसा के आधार पर प्रत्ययवाद को सिद्ध करने का प्रयास किया है। इन्द्रियानुभववादी होने के कारण बर्फले मात्र उसी को सत्य मानते है जो अनुभूत अथवा अनुभवगम्य है। अनुभव केवल गुणों का होता है। (वस्तु के गुण) और गुण मन के प्रत्यय है। अतः अनुभूत वस्तुओं का सत्य रूप प्रत्ययात्मक है। हमारा ज्ञान प्रत्ययों तक सीमित है क्योंकि हम केवल प्रत्ययों का ही अनुभव करते है। इसलिए संसार की सारी वस्तुऐं प्रत्यय मात्र है। प्रत्यय जगत के अतिरिक्त बाह्य

जगत की सत्ता नहीं है। प्रत्ययों का अधिष्ठान हमारा मन है। अतः विश्व मनोमय है। प्रश्न यह उठता है कि हम जिन प्रत्ययों का अनुभव करते है। वे कहाँ से आते है? निश्चय ही ऐसे प्रत्ययों की सृष्टि हमारा या आप का मन नहीं कर सकता, क्योंकि व असीम है। ये सभी परम मन या परम आत्मा पर निर्भर है। अतः विश्व के मूल में एक परम मन अर्थात ईश्वर का मानना आवश्यक है। क्योंकि असीम आत्मा इतने बड़े विशाल विश्व का कारण नहीं हो सकती। इस प्रकार जब विश्व की व्याख्या आध्यात्मिक सत्ता द्वारा हो जाती है तो उसके लिए भौतिक पदार्थ को स्वीकार काना व्यर्थ है। इस तर्को से बर्फले ने भौतिकवाद और अनीश्वरवाद का खंडन करके प्रत्ययवाद एवं ईश्वरवाद का मंडन किया है।

प्रत्ययों के अतिरिक्त एक अन्य वस्तु भी है जिसे हम जानते है वह है हमारी आत्मा प्रत्यय हमारी प्रतीति के विषय होते ही आत्मा का हमें एक प्रकार का अंर्तबोध होता है।

2. हीगल ने विश्व की व्याख्या बोध गम्यता Explicabilits के आधार पर करके प्रत्ययवाद को सिद्ध करने का सम्पूर्णता में बुद्धि द्वारा जाना जा सकता है अर्थात बुद्धिगम्य है, प्रक्रति भी बुद्धिगम्य है। इसका अर्थ है कि प्रकृति भी बुद्धि है। बुद्धि तत्व, वस्तु, सृष्टि का सार है। इस प्रकार विश्वकों नियमों के अनुसार संचालित है। किन्तु वेसा होने पर वह बौद्धिक अर्थात आध्यात्मिक हो जायेगा। क्योंकि बौद्धिक नियम बौद्धिक पदार्थ का ही संचालन करते है अतः विश्व मूलतः भौतिक न होकर आध्यात्मिक ही है।
3. प्रयोजनवादी विचारकों ने विश्व में व्याप्त व्यवस्था और सामंजस्य के आधार पर प्रत्ययवाद को सिद्ध करने का प्रयास किया है। इनकी मान्यता है कि विश्व के सभी पदार्थ सभी घटनाएं विशेष नियमों के अनुकूल घटित हो रही है विश्व में नियमों का अखंड साम्राज्य है। विश्व की इस व्यवस्था और सामन्जस्य की व्याख्या तभी हो सकती है जबकि इसके मूल में बुद्धि अथवा चेतन तत्व को स्वीकार कर लिया जाये क्योंकि अनुभव द्वारा यहीं प्रमाणित होना है कि बिना चेतना के ऐसी व्यवस्था और सामन्जस्य आकष्मिक रूप से सम्भव नहीं।
4. टामस हिल ग्रीन ने विश्व की एकता के आधार पर प्रत्ययवाद को प्रमाणित किया है। आपके अनुसार विश्व के समस्त व्यापार अखंड कार्य कारण श्रृंखला मात्र है। इन विभिन्न कड़ियों को श्रृंखलित या सम्बद्ध करने वाली शक्ति चेतन सत्ता है। यह चेतन सत्ता कार्यकारण श्रृंखला अथवा सम्बद्ध प्राकृतिक घटनाओं को जानती है। ग्रीन ने कहा है कि–"हमें तर्क के आधार पर यह मानना पड़ेगा कि– प्रकृति का अनुभव करने वाले व्यक्ति में एक ऐसा तत्व होता है, जो प्राकृतिक नहीं होता और प्रकृति के तथ्यों की भांति उसकी विवेचना की नहीं हो सकती है। ग्रीन ने उसे आध्यात्म तत्व कहा है। उस तत्व को प्राकृतिक न कहने का तात्पर्य यह है कि– वह न तो प्रेपंच में सम्मिलित है और न वह इन सम्बंधो से निर्मित है जिनको वह

उनमें संगठित करता है। अतः विश्व के मूल में मन या आत्मा को अथवा चेतना को मानना ही पड़ेगा। इस प्रकार विश्व का आधार आध्यात्मिक ही सिद्ध होता है।"

प्रत्ययवाद के प्रकार

पाश्चात्य दर्शन के इतिहास में प्रत्ययवाद का समुचित विवरण सर्वप्रथम हमें प्लेटो के दर्शन में उपलब्ध होता है। उनके अनुसार परमतत्व जाति प्रत्ययों की एक समष्टि या तंत्र है। प्लेटो ने श्रेष्ठतम प्रत्यय को श्रेयस प्रत्यय Idea of the Good कहा है। बाद में उनका यह प्रत्ययवाद स्विनोजा के दर्शन में व्यक्त हुआ। डेकार्ट तथा लाक जैसे प्रत्ययवादियों ने बर्फले के प्रत्ययवाद के लिए एक पृष्ठ भूमि तैयार किया। बर्फले को प्रत्ययवाद आत्मनिष्ठ (Subjective) प्रत्ययवाद है जबकि कान्ट ने वस्तुनिष्ठ (Objective) प्रत्ययवाद का प्रतिपादन किया। फिक्टे और हिगल ने दर्शन में प्रत्ययवाद ने तत्वमीमांसा के अनुकूल स्वरूप धारण कर लिया।

भारतीय दर्शन में प्रत्ययवाद का प्रथम सुस्पष्ट विवेचन हमें श्रग्वेद के नासदीय सुक्त में मिलता है। जहाँ सविकल्प बुद्धि तत्व ग्रहण करने में असमर्थ प्रतीत है। बुद्धि जगत की उत्पत्ति का प्रतिपादन नहीं कर पाती। प्रारम्भ में न सत था न असत, न जीवन था न मृत्यु, न दिन था न रात्रि। उपनिषद भी बारम्बार यह घोषणा करते है कि– वाणी और बुद्धि की पहुंच मन तक नहीं हो सकती। मन और वाणी तत्व तक न पहुंच कर वापस लौट आती है लेकिन उपनिषदीय प्रत्ययवाद को वस्तुनिष्ठ, आत्मनिष्ठ अथवा परम प्रत्ययवाद के किसी भी सांचे में रखना बड़ा कठिन है। बौद्ध दर्शन के शुन्यवाद तथा विज्ञानवाद भी प्रत्ययवादी चिंतकों के तहत ही आते है। शुन्यवाद के अनुसार शुन्य तत्व अनिर्वचनीय है और विज्ञानवाद के अनुसार विज्ञान चेतना का ही एक मात्र अस्तित्व है। जो वस्तुऐं मन के बाहर दिखाई पड़ती है। वे मन के भीतर ही है। मन के प्रत्यय या विज्ञान मात्र है।

भारतीय प्रत्ययवाद का चरम विकास शंकराचार्य के दर्शन में हुआ है। ब्रहमं सत्ये जगत मिथ्या। आधुनिक काल के प्रत्ययवादी भारतीय विचार को में स्वामी विवेकानंद, रवीन्द्र नाथ ठाकुर, महर्षि अरविंद, डा0 राधा कृष्ण आदि प्रमुख है। जिन पर अद्वैत वेदान्त का गहरा प्रभाव है।

प्रत्ययवाद के मुख्यतः दो रूप है।

1. तत्व मीमांसीय प्रत्ययवाद– Metaphysical Idealism
2. ज्ञान मीमांसीय प्रत्यवाद– Episte Mological

तत्म्व मीमांसीय प्रत्ययवाद– परम तत्व के स्वरूप विषयक प्रश्न का एक विशिष्ट उत्तर देता है जिसके अनुसार उसका स्वरूप चेतन अथवा अभौतिक है। ज्ञान मीमांसीय प्रत्ययवाद ज्ञाता और ज्ञेय के सम्बंध विषयक प्रश्न का समाधान है जिसके अनुसार ज्ञेय ज्ञाता पर आधारित है। यहाँ मुख्यतः तत्वमीमांसीय प्रत्ययवाद को ही वर्णन किया जा रहा है। तत्व मीमांसीय प्रत्ययवाद मुख्यतः निम्न प्रकार का होता हैः–

- आत्मनिष्ठ प्रत्ययवाद– (Subjective Idealism)
- विषय निष्ठ प्रत्ययवाद– (Objective Idealism)
- परम प्रत्ययवाद– (Absolute Idealism)
- गोचरीय प्रत्ययवाद– (Phenomenalistic Idealism)
- संकल्पवादी प्रत्ययवाद– (Voluntaristic Idealism)
- वैयक्तिक प्रत्ययवाद– (Personolistic Idealism)

सभी प्रत्ययवादी विचारकों की मूलधारणा– आत्मा अथवा प्रत्यय है। अब यहाँ समस्या यह है कि– उस आत्मा या प्रत्यय का स्वरूप क्या है? वह हमारी जैसी सीमित आत्माओं और उनके प्रत्ययों की भांति है अथवा विषयनिष्ठ असीम और सार्वभौम।

कुछ विचारकों ने असीम आत्मा को ही परम तत्व माना है। अतः इनके मत को Subjective Idealism कहा जाता है।

दुसरे विचारकों ने उसे असीम माना है– जो ससीम आत्माओं पर आधारित न होकर विषयनिष्ठ अस्तित्व वाला है। इसे विषयनिष्ठ प्रत्ययवाद कहा जाता है।

आगे चलकर विषयनिष्ठ प्रत्ययवाद का विकास एक विशिष्ट रूप में हुआ– जिसे परम प्रत्ययवाद Absolute की संज्ञा दी गयी। इसके साथ ही कुछ अन्य विचारकों ने इस समस्या का समाधान कुछ अन्य रूप से भी करने का प्रयास किया।

1– आत्मनिष्ठ प्रत्ययवाद– (बर्फले)– आत्मनिष्ठ प्रत्ययवाद के अनुसार विश्व का मूल तत्व चेतन है। विश्व के समस्त पदार्थ प्रत्यात्मक है। संसार में केवल हम है और हमारे प्रत्यय है। मन और उनके प्रत्यय से भिन्न बाध्य या भौतिक पदार्थ नाम की कोई वस्तु नहीं है। जो पदार्थ ठोस आकार युक्त तथा अन्य गुणों से युक्त प्रतीत होते है। वह प्रत्यय मात्र है। उसका अस्तित्व मन अथवा आत्मा पर निर्भर है। अतः जगत अपनी उत्पत्ति तथा ज्ञान के लिए आत्म सापेक्ष है। उसकी स्वतंत्र सत्ता नहीं है।

पाश्चात्य विचारधारा में इस सिद्धांत के प्रधान प्रतिनिधि जार्ज बर्फले है और भारतीय विचारधारा में बौद्ध विज्ञान वादी।

बर्फले के मतानुसार– विश्व ब्रह्ममांड में केवल दोही पदार्थ पायें जाते है। आत्मा और उसके प्रत्यय। संसार में जड़ द्रव्य की कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं हे। हमारा ज्ञान प्रत्ययों तक सीमित होने के कारण तथा मात्र प्रत्ययों का अनुभव करने से विश्व की समस्त वस्तुए प्रत्यय मात्र है। प्रत्यय जगत के अलावा बाहय जगत की सत्ता नहीं हे। क्योंकि प्रत्ययों का आधार हमारा मन है। अतः सिद्ध है कि विश्व मनोमय है। सारे विश्व को हम प्रत्ययों में विश्लेषित कर सकते है। उदाहरणार्थ– वृक्ष कुछ प्रत्ययों का समूह मात्र है कुछ विशिष्ट आकारों रंगो आदि के प्रत्यय को वृक्ष नाम दे दिया जाता है।

बर्फले की धारणा है कि लोगों का संसार की वस्तुओं (जड़दत्व) के अस्तित्व में विश्वास होने का कारण उनका अमूर्त प्रत्ययों की सत्ता में विश्वास है। जिस प्रत्यय का विषय कोई विशेष या मूर्त वस्तु न हो उसे अमूर्त प्रत्यय कहते है। लेकिन धरत्व और गोत्वकी का प्रत्यय अमूर्त प्रत्यय है। इसी प्रकार विशेष गुणों से भिन्न गुणों के कल्पित आश्रय द्रव्य का आश्रय अमूर्त प्रत्यय है। बर्फले का कहना है कि– अमूर्त प्रत्ययों की सत्ता ही नहीं है। अतः द्रव्य की सत्ता असिद्ध है।

काल ने जहाँ गुणों में भेद स्वीकार कर गुणों को मूल गुण और उपगुण में विभाजित किया था और यह कहा था कि मूल गुणों की द्रष्टा की प्रतीत से बाहर सत्ता होती है। अतः द्रव्य की भी बाहर सत्ता होती है। किन्तु द्रव्य के गौण गुण हमारी चेतना के बाहर अस्तित्व नहीं रखते। लेकिन बर्फले ने लाक ही युक्ति द्वारा गुणों में भेद को अस्वीकार करते हुए यह मत व्यक्त किया कि धन कि गुणों की सत्ता किसी भी हालत में चेतन सत्ता से बाहर नहीं होती।

इस प्रकार अमूर्त प्रत्ययों और मूल गुणों की विषयनिष्ठता का निराकरण करके बर्फले इस मे तत्व का प्रतिपादन करते है कि– अस्तित्व का अर्थ है कि प्रतीति का विषय होना(दृष्यते इतिवर्तते) तात्पर्य यह है कि– उसी की सत्ता मानी जा सकती है जो अनुभव करता या अनुभव किया जाता है। अतः अनुभव कर्त्ता आत्मा है और अनुभव के विषय प्रत्यय है। अतः आत्मा और उसके प्रत्यय के अतिरिक्त अन्य किसी की सत्ता नहीं है। ईश्वर भी आत्मा रूप है वे परमात्मा है। बर्फले का कथन है कि– कुछ प्रत्ययों को आत्मा स्वंय उत्पन्न करती है और कुछ को ईश्वर। प्रत्ययों के दो रूप है, संवदेन व स्वसंवेदन। संवेदनों की सृष्टि ईश्वर करते है और स्वसंवेदनों की सृष्टि आत्मा करती है।

अतः बर्फले यह मत प्रतिपादित करते है कि– आत्मा और उनके प्रत्ययों के अतिरिक्त कोई सत्ता नहीं है। आत्मा का अर्थ यहाँ परमात्मा और जीवात्मा दोनों से है। बहुत से प्रत्यय मेरी आत्मा के बाहर हो सकते है लेकिन परमात्मा के बाहर नहीं। प्रत्ययों की सत्ता हमेशा बनी रहती है। उदाहरणार्थ यदि किसी वस्तु की प्रतीति मुझे नहीं हो रही

है तो अन्य आत्मा को हो सकती है। यदि अन्य आत्मा को भी उसकी प्रतीति नहीं हो रही है तो परमात्मा को अवश्य उसकी प्रतीति होती है। अतः जगत की सत्ता हमारे इन्द्रियानुभव पर आधारित न होकर ईश्वर के ज्ञान पर आश्रित है।

इस प्रकार बर्फले की इस उक्ति में की सत्ता अनुभव मूलक है, अनुभव शब्द में केवल इन्द्रियानुभव का ही तात्पर्य नहीं है बल्कि इसमें अंर्तबोध या निवीकल्प स्वानुभूति का भी समावेश हो जाता है। अन्य आत्माओं तथा ईश्वर का ज्ञान हमें इसी अंर्तबोध से ही होता है।

सारांशतः विषयनिष्ठ बर्फले का मत है कि– विश्व में दो ही तत्व है। आत्माएं और उनके प्रत्यय। ईश्वर भी आत्म रूप है यद्यपि वह अन्य आत्माओं से अधिक शक्तिशाली है।

बर्फले का प्रत्ययवाद भारतीय दर्शन के विज्ञानवादी बौद्धों के मत से आंशिक समानता रखता है। विज्ञानवाद के अनुसार चित्त या मन ही एक मात्र सत्ता है। चित्त से उसका तात्पर्य किसी अपरिवर्तनशील आत्मा से नहीं है। विज्ञान प्रवाह या विभिन्न मानसिक अवस्थाओं का संघात मात्र ही चित्त और मन के बाहर प्रतीत होते है। वे सभी हमारे मन के तहत आते हे। जिस प्रकार स्वप्न की वस्तुए मन के अंदर होने पर भी मन के बाहर जान पड़ती है। उसी प्रकार साधारण मानसिक अवस्थाओं में भी जो पदार्थ बाहरी प्रतीत होते है वे भी विज्ञान मात्र ही है।

समीक्षा–

1. बर्फले के आत्मनिष्ठ प्रत्ययवाद पर सबसे बड़ा आक्षेप यह किया जाता है कि उनका सिद्धांत अहं मात्रवाद (Solipsism) मानसवाद (Mentalism,) या मात्र आत्मनिष्ठ प्रत्ययवाद का प्रतिपादन करता है। अहंमात्र बाद के अनुसार– मेरा और मेरे प्रत्ययों का अस्तित्व है। जो कुछ है वह या तो हमारा अहम है। या तो उसका प्रत्यय। इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं है लेकिन बर्फले का सिद्धांत इसके काफी दूर है। उन्होंने अन्य आत्माओं और परमात्मा ईश्वर को भी स्वीकार किया है। इनका सिद्धांत मानसवाद से भी मुक्ता है। मानसवाद के अनुसार– जगत न तो हमारी मनोमय कल्पना है और न तो असत है। इसी प्रकार उनके मत को केवल विषयिनिष्ठ भी नहीं कहा जा सकता।
2. प्रत्ययवाद के अनुसार– यदि परम तत्व चेतन है तो उस अचेतन भौतिक जगत की उत्पत्ति कैसे हो गयी। इस समस्या के समाधान का प्रयत्न प्रत्ययवादियों ने भौतिक जगत को आध्यात्मिक प्रमाणित करके किया है। बर्फले ने भौतिक जगत की व्याख्या न करके उसका केवल नाम दूसरा रख दिया है अर्थात उसे भौतिक द्रव्य न मान कर प्रत्ययों का पुन कह दिया। रूप, रस, गंध, स्पर्श आदि के अनुभव को स्वीकार करते हुए भी उनकों उन्होंने प्रत्यात्मक कह दिया। जबकि सामान्य व्यक्ति उन्हें

भौतिक ही समझता है। प्रत्ययों की उत्पत्ति का कारण उन्होंने ईश्वर को माना है। लेकिन एक अनुभववादी को यह शोभा नहीं देता कि वह आत्मा और ईश्वर की जिनका कभी अनुभव या प्रत्यक्ष नहीं होता सत्ता को स्वीकार करें।

यदि अनुभूत न होने के कारण भौतिक द्रव्य को असत्य कहा जा सकता है तो ईश्वर और आत्मा को भी असत्य माना जा सकता है।

3. आत्मनिष्ठ प्रत्ययवाद की समीक्षा करते हुए– नव्य वास्तव वादी प्रो0 पेरी ने बर्फले के सिद्धांत में मुख्यतः दो दोषों का विवेचन किया है।

   क. प्रथम दोष– आरम्भिक अभिधान को परिभाषा समझ लेना है– Defination by initial predication. बर्फले जब यह कहते है कि– यह कन्द पुष्प है, इसका तात्पर्य है कि यह देखा जाता है तब वे आरम्भ से ही मान लेते है कि कन्द पुष्प है एकान्ततः अनुभव मूलक है। वे यह विचार नहीं करते कि यह कन्द पुष्प ज्ञान जगत और वस्तु जगत दोनों में हो सकता था अर्थात वस्तु सत्ता और वस्तु प्रत्यय दोनों हो सकता है। अतः उनका कथन एकान्त कथन है यह अन्य सम्भावना का विचार नहीं करता।

   ख. दूसरा दोष– अहं केन्द्रिक विषमावस्था है। इसी के चक्कर में पड़कर बर्फले ने सत्ता अनुभव मूलक है का सिद्धांत प्रतिपादित किया है।

4. अनुभव करने का तात्पर्य है किसी वस्तु या विषय का ज्ञान प्राप्त करना। ऐसी अवस्था में विषय को छोड़कर अनुभव करने को ही सत्य कैसे मान लिया जाय। ज्ञान के लिए विषयी और विषय दोनों की आवश्यकता है। इनमें से एक भी छोड़ा नहीं जा सकता। विषयिनिष्ठ प्रत्ययवादी विषय का बलिदान विषयी मन की वेदी पर कर देते है। ये यह भूल जाते है कि विषयी (मन) तथा विषय में इस प्रकार का सम्बंध है कि एक के बिना दूसरा नहीं रह सकता। दोनों के सम्बंध से ही ज्ञान की उत्पत्ति होती है।

सारांशतः आत्मनिष्ठ प्रत्ययवाद मनुष्य की सहज बुद्धि के इतना प्रतिकूल है कि उसमें विश्वास उत्पन्न होना असम्भव प्राय है।

विषय निष्ठ प्रत्ययवाद– Objective

विषय निष्ठ प्रत्ययवाद के अनुसार अनुभव जगत हमारे मन का प्रत्यय मात्र नहीं है। जगत का अस्तित्व मनुष्य के उदभव के पूर्व था और मनुष्य के नष्ट हो जाने के पश्चात भी रहेगा। विषयनिष्ठ प्रत्यवाद में आत्मनिष्ठ प्रत्ययवाद के विपरीत भौतिक अथवा जड़ पदार्थो के अस्तित्व को स्वीकार करते हुए उन्हें मन और चेतना का बाह्यी करण कहा गया है। विषयनिष्ठ प्रत्ययवाद भी परम तत्व को चेतन अथवा आध्यात्मिक कहता है किन्तु उसे ससीम न मानकर असीम और सर्वव्यापी स्वीकार करता है। उसी पर हमारी ससीम आत्माएं और अनुभव जगत आधारित है। अतः विश्व का अस्तित्व हमारे जैसे ससीम जैसी आत्माओं के अभाव में नष्ट नहीं हो सकता, क्योंकि वह उन पर नहीं प्रत्यय असीम आध्यात्मिक सत्ता पर आधारित है। जिसका अभाव असम्भव है।

विषयनिष्ठ प्रत्ययवाद के मुख्य दार्शनिक प्लेटो है। प्लेटो के अनुसार परमतत्व सम्प्रत्ययों का एक तंत्र है जिसमें सामान्य प्रत्यय तारतम्यात्मक श्रेणी में व्यवस्थित रहते है। सामान्य के लिए प्लेटो ने Idea शब्द का प्रयोग किया है। अतः उनका सबसे महत्वपूर्ण सिद्धांत सामान्य प्रत्ययवाद है। प्लेटो के इस सामान्य प्रत्यय पर पांच दृष्टिकोण से विचार किया गया है। ज्ञान की दृष्टि से, स्वरूप की दृष्टि से उद्देश्य अथवा प्रयोजन की दृष्टि से, सत्ता की दृष्टि से, रहस्य की दृष्टि से।

1. ज्ञान की दृष्टि से सामान्य प्रत्यय ज्ञान के वास्तविक विषय है। प्लेटों के अनुसार ज्ञान और ज्ञान का विषय दोनों नित्य और अपरिणामी होने चाहिए। इन्द्रिय जगत (अनुभव जगत) में अनित्यता और संदेह का साम्राज्य अवश्य है किन्तु यह इन्द्रिय जगत तक ही सीमित है सामान्य प्रत्यय नित्य और असंदिग्ध है। हमारे ज्ञान में जो सर्वव्यापकता और निश्चयात्मकता है वह इन्द्रिय जगत से हमे केवल अनित्य और विश्रृंखल संवेदन ही प्राप्त होते है जो हमारे ज्ञान के विषय नहीं बन सकते। प्लेटो का मन्तव्य है कि सामान्य प्रत्यय के बिना हमे जगत का इन्द्रियानुभव भी नहीं हो सकता, क्योंकि ज्ञान का वास्तविक विषय सामान्य प्रत्यय ही है। इन सामान्य प्रत्ययों का अस्तित्व विषयनिष्ठ है। किसी अनुभवकर्त्ता पर आश्रित नहीं है। इसीलिए प्लेटो को विषयनिष्ट प्रत्ययवाद का समर्थक माना गया है।
2. स्वरूप की दृष्टि से प्रत्यय सामान्य है। जगत के विविध व्यक्तियों की सत्ता सामान्यों के कारण ही होती है। सामान्य अपनी जाति अथवा वर्ग के व्यक्तियों से पृथक करते है। सामान्य का कार्य सजातीय व्यक्तियों में एक रूपता लाना और उनका विजातीय व्यक्तियों से भेद करना है।

पदार्थो के प्रत्तेक वर्ग के लिए एक सामान्य होता है अतः जितने वर्ग है उतने सामान्य है। सामान्य आपस में असम्बद्ध नहीं प्रत्युत व्यापकता के अनुसार श्रेणी बद्ध रहते है। कम व्यापक अपने से अधिक व्यापक के अंदर समाविष्ठ रहते है।

अश्वत्य गोत्व आदि पशुत्व के अंदर तथा पशुत्व व मनुष्यत्व जीवत्व के अंतर्गत समाविष्ट रहते है। इस प्रकार सामान्यों की श्रेणी एक ऐसा तार तम्य बनाती है, जिसकी प्रथम सीढ़ी पर न्यूनतम व्यापकता वाला प्रत्यय है और अंतिम पर श्रेष्ठतम व्यापकता वाला। श्रेष्ठतम सामान्य को प्लेटो ने श्रेयस–प्रत्यय अथवा शुभ प्रत्यय (The Idea of the Good) कहा है। यह श्रेयस प्रत्यय ही सभी प्रत्ययों का आधार है।

3. उद्‌देश्य अथवा प्रयोजन की दृष्टि से सामान्य प्रत्यय वे नित्य सांचे है जिनके अनुसार ईश्वर इन्द्रिय जगत के पदार्थो का निर्माण करते है। सामान्य प्रत्यय विश्व के पदार्थो में अनुस्यूत है। सामान्य प्रत्यय विश्व के पदार्थो के वास्तविक स्वरूप है और समस्त सृष्टि अपने स्वरूप का लाभ करने के लिए विकसित हो रही है। इस प्रकार यह विकास यंत्रवत नहीं सोदेश्य व सप्रयोजन है। उस विशुद्ध श्रेयस प्रत्यय का निर्विकल्प साक्षात्कार ही मानव जीवन की परम सार्थकता है।
4. सत्ता की दृष्टि से सामान्य प्रत्यय चिद्रुप शुद्ध सत है। विश्व के पदार्थ अपनी सत्ता सामान्य प्रत्ययों से ही लेते है। इस सत्ता का तारतम्य है जो पदार्थ सामान्य प्रत्यय की ओर जितना ही अधिक उन्मुख होंगे, उसकी उतनी ही अधिक सत्ता होगी। सामान्य प्रत्यय नित्य अविकारी अविनाशी शाश्वत, सर्वव्यापी सत है। हमारे प्रत्यय इन दिव्य सामान्य प्रत्ययों की अभिव्यक्ति मात्र है। इन सामान्य प्रत्ययों की वास्तविकता सत्ता है। जगत के पदार्थ इन सामान्य प्रत्ययों के ही प्रतिरूप या अनुकृतियां है।
5. रहस्य की दृष्टि से सामान्य प्रत्यय श्रेयस प्रत्यय की अभिव्यक्ति के स्तर है। इस सामान्य प्रत्ययों का बहुत्व श्रेयस प्रत्यय में विलीन हो जाता है।

सारांशतः प्लेटो का यह श्रेयस प्रत्यय एक साथ सत्यं, शिवं, सुंदरम है। यह सत चित्त, आनंद है। यह समस्त सामान्य प्रत्ययों का और समस्त सांसारिक पदार्थो का जनक है। यह प्रत्यय जगत और इन्द्रिय जगत दोनों का अंर्तयामी अधिष्ठान है। यह आत्मा को ज्ञान शक्ति और दृश्य जगत को सत्ता प्रदान करता है। यही ईश्वर है। कहीं–कहीं प्लेटो ने ईश्वर को ही सृष्टि का निमित्त कारण और नियेत्रा माना है तथा श्रेयस प्रत्यय को ईश्वर का पिता माना है। किन्तु विचार करने से स्पष्ट होता है कि ईश्वर तथा श्रेयस प्रत्यय में कोई भेद नहीं है। यह श्रेयस प्रत्यय निर्गुण और अनिर्वनीय है बुद्धि की पहुंच इस तक नहीं है। यह केवल निर्विकल्प अंतः प्रज्ञा द्वारा ही साक्षात किया जा सकता है।

समीक्षा–

1. दर्शन का उद्‌देश्य विश्व की संतोष जनक व्याख्या करना है। लेकिन प्लेटों इसमें सफल नहीं हो पाये है। प्लेटो के अनुसार इन्द्रिय जगत के आधार सामान्य प्रत्यय है। केवल वे ही एक मात्र तत्व है। भौतिक पदार्थ, सामान्य प्रत्ययों की प्रतिकृतियां या अनुकृतियां है। ये अनुकृतिया भी पूर्ण न होकर अपूर्ण है। यदि भौतिक जगत सामान्य प्रत्यय की अनुकृति व प्रतिलिपि मात्र है तो फिर इसे तात्विक नहीं कहा जा

सकता। ऐसी दशा में वह मिथ्या और भ्रमात्मक हो जायेगा। किन्तु प्लेटो ने भौतिक जगत को मिथ्या नहीं माना है। यही विरोधाभास है।

2. प्लेटो के अनुसार सामान्य प्रत्ययों की संख्या अनेक है तथा उनकी एक बार तम्यात्मक श्रेणी है। जिसमें पूर्णतयः निर्पेक्ष सर्वव्यापी सत्ता एक है। जिसे उन्होंने श्रेयस प्रत्यय अथवा शुभ प्रत्यय कहा है। लेकिन सामान्य प्रत्यय और श्रेय प्रत्यय में क्या सम्बंध है। उसकी संतोष जनक व्याख्या प्लेटो नहीं कर पाये है।
3. प्लेटो के प्रत्ययवाद में सामान्य प्रत्ययों तथा इन्द्रिय प्रत्यय और भौतिक द्रव्य के मध्य द्वैत पाया जाता है। प्लेटो अनुभव जगत और प्रत्यय जगत की खाई को पाट नहीं पाये है। यदि प्रत्यय अनुभव गम्य वस्तुओं के बनाने वाले मूल तत्व है तो उन्हें उनसे परे न होकर उनमें व्याप्त होना चाहिए। परन्तु प्लेटो ने दोनों को पृथक माना है। इस प्रकार सामान्य प्रत्ययों के अतिरिक्त भौतिक जगत भी परमार्थ हो जाता है। यह प्रवृत्ति द्वैतवादी है और इसीलिए कुछ लेखक उन्हें प्रत्ययवादी मानने में हिचकिचाते है।

———————————————

परम या निर्पेक्ष प्रत्ययवाद– Absolute Idealism

कान्ट के उत्तरकालीन दार्शनिक जैसे फिक्टे, शोलिंग, हीगल, ग्रीन, बोसांके, ब्रैडलेत या क्रोचे आदि ने विषयनिष्ठ प्रत्ययवाद को नवीन दिशा में विकसित किया जिसे परम प्रत्ययवाद या निर्पेक्ष प्रत्ययवाद कहा जाता है। परम प्रत्ययवाद में भी परमतत्व को मानसिक चेतन अथवा आध्यात्मिक घोषित किया गया है। परम प्रत्ययवाद विषयनिष्ठ प्रत्ययवाद की भांति परमतत्व भी घोषित करता है तथा उसकी निर्पेक्षता पर अधिक बल देता है। परम प्रत्ययवाद में परमतत्व को परममन Absoltemind अथवा ब्रहम की संज्ञा दी गयी है। यह असीम तथा निर्पेक्ष या परम मन अपने से बाहर किसी विषय पर निर्भर नहीं रहता। यदि ऐसा होता तो यह असीम तथा निर्पेक्ष व रहकर अपने से बाध्य विषयों के द्वारा सीमित तथा सापेक्ष हो जाता। इसीलिए हीगल ने कहा है कि सम्पूर्ण विश्व का विकास या सृष्टि निर्पेक्ष प्रत्यय के अंतर्गत ही स्वतः सृष्टि की भावना के कारण सम्भव है।

पाश्चात्य दर्शन में परम प्रत्यय का प्रारम्भ जर्मन दार्शनिक फिच्ते के दर्शन में होता है तथा इसका चरम विकास हीगल तथा हीगल के दर्शन से प्रभावित आधुनिक प्रत्ययवादियों जैसे ग्रीन, बोसांके, ब्रैडले, क्रोचे आदि के दर्शनों में होता है। भारतीय चिंतन धारा में इसका प्रारम्भ उपनिषदों तथा शून्यवाद में हुआ और चरम विकास शंकर–वेदान्त तथा उससे प्रभावित दर्शनों में।

हीगल के अनुसार परमतत्व, तर्कबुद्धि Reason है, जो एक असीम सर्वव्यापी तथा निर्पेक्ष है। इसे ही हीगल ने परम प्रत्यय कहा है। सम्पूर्ण विश्व इसी का परिणाम है। तर्क बुद्धि से भिन्न कोई अबौद्धिक तत्व वास्तविक नहीं है। इसीलिए उन्होंने कहा है कि– जो बौद्धिक है वही सत है और जो सत है वह बौद्धिक है। What is real ia Rational and What is rational is Real.

तर्कबुद्धि की अनिवार्य अभिव्यक्ति विश्व है। अतः बिना विश्व के रूप में अभिव्यक्त हुए वह नहीं रह सकती। इसलिए विश्व उसके लिए आवश्यक है और वह विश्व के लिए क्योंकि वहीं विश्व में प्रकाशित है। तर्क बुद्धि किसी विचारक या आत्मा की बुद्धि नहीं है। प्रत्युत उसकी स्वतंत्र सत्ता है। वह सतत विकासशील है और उसका विकास द्वान्दात्मक प्रणाली Dialectial Method के अनुसार होता है।

इस प्रणाली का मूल सिद्धांत है कि धारणाओं में अंर्तविरोध रहता है इसलिए एक धारणा अपने विरोधी को उत्पन्न करती है। तब भी दोनों का सामंजस्य एक तीसरी धारणा में होता है। तीसरी का भी विरोधी उसी से उत्पन्न होता है। तब फिर दोनों का सामंजस्य होता है। इस क्रम में पहली धारणा को पक्ष दूसरी को प्रतिपक्ष तीसरी की संपक्ष कहते है।

सत्ता और असत्ता क्रमशः पक्ष और विपक्ष है उनका सामंजस्य भाव या Becoming होना होता है। भाव या होना संपक्ष है। द्वन्दात्मक विकास के इस क्रम का स्वाभाविक प्रर्यावसान निर्पेक्ष या परम प्रत्यय में होता हैं Absolute Idea जिसे हीगल ने परम आत्मा या

पूर्ण प्रत्यय कहा है। इसमें सभी धारणाये अपने अंर्तविरोधों से मुक्त होकर समाविष्ट रहती है।

अतः परम या निर्पेक्ष प्रत्यय वह धारणा है जिसमें समस्त अपूर्ण प्रत्ययों या धारणाओं का सत्य समाविष्ट है, जिसमें कोई विरोधा, असंगति, एकांगिता या न्यूनता नहीं है। परम प्रत्यय तर्क बुद्धि का समग्र रूप है। तर्क बुद्धि अपनी सम्पूर्णता में परम प्रत्यय या निर्पेक्ष प्रत्यय है।

इस प्रकार हेगल का परम प्रत्यय या तर्क बुद्धि, जीवित तंत्र या समष्टि है जिसके विभिन्न अंश एक दूसरे की अपेक्षा करते है और एक दूसरे को प्रभावित करते है।

हेगल की भांति ब्रैडले ने भी विश्व प्रक्रिया व परमतत्व को स्वीकृत किया है। ब्रैडले का मत है कि– परम तत्व समंजस्य रूप है वह ऐसा अवयवी है जिसके अवयवों में पूर्ण पारस्परिक संगति है।

ब्रैडले की मान्यता है कि– तत्व पदार्थ अनुभूति रूप है। अतः कोई वस्तु तात्विक नहीं हो सकती जो कभी अनुभव का विषय नहीं होती और मेरे लिए कुछ भी तात्विक नहीं हो सकता जिसका मैं अनुभव नहीं कर सकता। उन्होंने यह भी कहा है कि अनुभव जगत के सभी आभास Appereance परम तत्व में है। उन आभासों के अतिरिक्त परम तत्व के पास कोई सम्पत्ति नहीं है। तात्पर्य यह है कि यद्यपि स्वंय अपने में प्रत्तेक आभास अतात्विक है किन्तु अपनी समग्रता में सभी आभास मिल कर परम तत्व के सामंजस्य रूप का निर्माण करते है।

भारतीय दर्शन में परम प्रत्यय की धारणा का विकास शुन्यवाद व अद्वैत वेदान्त में हुआ है। शुन्यवादी नागार्जुन ने परम तत्व की चतुष्कोटि विनि मुक्त तथा अनिवर्चनीय कहा है। इसी तरह शंकराचार्य ने भी ब्रहम को निर्गुण तथा अनिवर्चनीय स्वीकार किया है।

तुलनात्मक दृष्टि से देखने पर भारतीय प्रत्ययवाद की अपेक्षा पाश्चात्य प्रत्ययवाद की यह विशेषता रही है कि वह किसी न किसी स्थान पर पहुंच कर अनुभव जगत और तात्विक जगत प्रपंच और पर ब्रहम की एकता अथवा तादात्म्य घोषित कर देता है।

समीक्षा– परम प्रत्ययवाद का खंडन करते हुए वस्तुवादी कहते है कि– परम प्रत्ययवाद के अनुसार निर्पेक्ष मन या चेतना ही परम तत्व है। तो प्रश्न उठता है कि यह निर्पेक्ष मन ज्ञेय है या अज्ञेय? यदि यह ज्ञेय है तो इसे किसी ज्ञाता के अनुभवों का अंश होना चाहिए। ऐसी अवस्था में फिर कैसे कहा जा सकेगा कि ससीम मन के प्रत्ययों से इसका स्वतंत्र अस्तित्व है। क्योंकि ज्ञेय होने के कारण हमारे मन का प्रत्यय हो जायेगा और इस प्रकार हम पुनः आत्मनिष्ठ प्रत्ययवाद में पुनः फस जायेंगे।

पुनः यदि यह कहा जाय कि निर्पेक्ष मन अज्ञेय है तो फिर लांक और डेकार्ट की स्थित में पहुंच जायेंगे। क्योंकि इनका कहना है कि हमारे अनुभव के परे जो सत्ता है वह ज्ञात गुणों का आधार है। ऐसी अवस्था में यह अज्ञेय आधार कल्पना मात्र रह जायेगा। फिर हम यह कैसे कह सकते है कि निर्पेक्ष मन या चेतन ही एक मात्र परम तत्व है। इस प्रकार परम प्रत्ययवाद या तो आत्मनिष्ठ प्रत्ययवाद में परिवर्तित हो जाता है या निर्पेक्ष मन के अस्तित्व का कोई प्रमाण ही उपलब्ध नहीं हो पाता।

फिर भी प्रत्ययवाद के अन्य प्रकारों की अपेक्षा परम प्रत्ययवाद अधिक संगत प्रतीत होता है। पाश्चात्य दर्शन में हेगल तथा भारतीय दर्शन में शंकराचार्य इस विचारधारा के कारण पाश्चात्य तिन धारा में हेगल को उच्च स्थान दिया जाता है। उनका दर्शन मानवता के सारे अनुभवों को समाष्टि रूप देने का सबसे बड़ा प्रयत्न है। विश्व के समस्त पदार्थ पूर्ण प्रत्यय की अभिव्यक्ति मात्र है।

———————————————————

वास्तववाद– Realism

बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में यूरोप और अमेरिका में प्रत्ययवादी विचारधारा के साथ ही अनेक ऐसी प्रणालियों का विकास हुआ जिसमें इस विचार धारा का खंडन किया गया कि– ज्ञान की प्रक्रिया के मध्य वस्तुओं का स्वरूप परिवर्तित हो जाता है और सम्पूर्ण विश्व को अनुभावात्मक अथवा अनुभव रूप मानना चाहिए।

मानव ज्ञान के विषयों की यथार्थता अथवा वास्तविकता को स्वतंत्र रखने की मान्यताओं के कारण इन विभिन्न दार्शनिक प्रणालियों को वास्तववाद की संज्ञा दी गयी।

पाश्चात्य दर्शन में वास्तववाद शब्द का प्रयोग दो भिन्न अर्थो में हुआ है। प्रारम्भिक यूनानी तथा मध्य कालीन दर्शन में इस शब्द का प्रयोग इस अर्थ में होता था कि– सामान्यों की (Universal) जो विशेषों में रहते है विशेषों से स्वतंत्र सत्ता है। इन सामान्यों की अपनी ही सत्ताओं से यथार्थता है। इसे तत्व मीमांसीय प्रत्ययवाद कहा जा सकता है। प्लेटो आदि को इसी अर्थ में प्रत्ययवाद कहा जाता है।

दूसरे अर्थ में– वास्तववाद शब्द का प्रयोग इस अर्थ में हुआ कि– ज्ञेय पदार्थो की सत्ता इसे ज्ञान मीमांसीय प्रत्ययवाद कहा जाता है। आधुनिक दर्शन में वास्तववाद शब्द का प्रयोग इसी ज्ञान मीमांसीय वास्तववाद के अर्थ में विशेष रूप से हुआ है। इसके अनुसार– ज्ञान के विषय अर्थात वस्तुएं मन से बाहर स्वतंत्र अस्तित्व रखती है। विश्व के पदार्थ इस प्रकार के है कि उनके लिए किसी ज्ञाता के ज्ञान का विषय बनना आवश्यकक नहीं है। अतः कोई वस्तु अपने अस्तित्व के लिए किसी ज्ञाता अथवा मन पर आधारित नहीं है। वास्तववाद की दूसरी मान्यता है कि ज्ञान से ज्ञात पदार्थो में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं होता है। पदार्थ का जैसा स्वरूप है उसका उसी रूप में ज्ञान होता है। अतः ज्ञान का विषय बनने के उपरांत भी पदार्थ उसी प्रकार का रहता है। जैसा वह पहले था और जिस समय वह ज्ञान का विषय नहीं होता है तब भी वैसा ही रहता है। इस प्रकार वस्तुओं का अस्तित्व ज्ञान तथा ज्ञाता से स्वतंत्र है।

वास्तववादी विचारधारा के इतिहास पर दृष्टिगत करने से हमें उसके दो व्यापक रूप मिलते हे। प्रथम लोक प्रसिद्ध वास्तव अथवा सामान्य बुद्धि वास्तववाद दूसरा दार्शनिक वास्तववाद।

लोक प्रसिद्ध वास्तववाद जन साधारण या सामान्य बुद्धि का सिद्धांत कहा जाता है। इसका आधार दार्शनिक चिंतन न होकर हमारा अपना स्वभाविक विश्वास है। साधारण मनुष्य स्वभाव से ही वास्तववादी होता है। उसके अंदर यह विश्वास रहता हे कि संसार की वस्तुएं हमारे मन से बाहर है और हम उनको ठीक रूप में जानते है जैसा कि वे है। इस प्रकार का विश्वास सभी देशों की साधारण जनता में उपलब्ध होता है। अतः इसको लोकप्रसिद्ध वास्तववाद की संज्ञा दी गयी है।

दार्शनिक वास्तववाद– दार्शनिक वास्तववाद की भी मान्यता है कि बाध्य वस्तुओं की सत्ता किसी ज्ञाता पर आधारित नहीं है अर्थात ज्ञान का विषय ज्ञाता से स्वतंत्र है तथा ज्ञात होने से उसमें कोई परिवर्तन नहीं होता है किन्तु इन सिद्धान्त के प्रतिपादन की प्रणाली में दार्शनिकों मतभेद है और इस मतभेद के कारण ही उसके कई रूप हो गये है। पाश्चात्य दर्शन में मुख्य रूप से दार्शनिक प्रत्ययवाद के तीन रूप मिलते है।

1- प्रतिनिधात्मक वास्तववाद– Represe ntative
2- नव्य वास्तववाद– Necs Realism
3- समीक्षात्मक वास्तववाद– Critical Realism

प्रतिनिधात्मक प्रत्ययवाद– प्रतिनिधात्मक वास्तववाद के अनुसार– "हमें वस्तुओं का सीधा या साक्षात ज्ञान नहीं होता वरन हम उन्हें उन अनुकृतियों या प्रति रूपों द्वारा जानते है जो उन वस्तुओं के कारण तथा उनके अनुरूप हमारे मन पर अंकित हो जाते है। हम वस्तुओं को सीधे उनके वास्तविक रूप में न देखकर उन्हें उनके प्रतिरूप या प्रत्ययों के रूप में जानते है। यद्यपि बाध्य जगत में उन वस्तुओं का स्वतंत्र अस्तित्व है।

अनुभववादी लांक के दर्शन में प्रतिनिधात्मक वास्तववाद का काफी स्पष्ट उदाहरण मिलता है। लांक ने प्रतिपादित किया है कि– वस्तुओं के प्राथमिक या मूल गुण ज्ञानेन्द्रियों को प्रभावित करके सरल प्रत्ययों का निर्माण करते है। एक वस्तु के आघात से उत्पन्न अनेक सरल प्रत्यय एक जटिल प्रत्यय को जन्म देते है जो बाध्य वस्तु का मानसिक प्रतिनिधि बन जाता है।

लोक ने बतलाया है कि संसार में जितने भी पदार्थ है उनमें परिणाम गति संख्या विस्तार आदि उनके मूल या प्राथमिक गुण है। इन गुणों के कारण ही जड़ वस्तुए जड़ है तथा उन पदार्थो से भिन्न है जो जड़ नहीं है।

रंग, सवाद, ताप, गंध इत्यादि गुणों को उन्होंने गौण गुण (Secondary Qualities) माना है। उनकी मान्यता है कि गौण गुणों के विशय में विभिनन व्यक्तियों के ज्ञान में भेद हुआ करता है। उदाहरणार्थ एक ही वस्तु का रंग कभी–कभी भिन्न–भिन्न व्यक्तियों को भिन्न–भिन्न प्रतीत होता है। अतः गौण गुणों के अनुभव में व्यक्तिगत प्रकार को भेद उपलब्ध नहीं होता। अतः लाक ने वस्तुओं के मूलगुणों को विषयनिष्ठ और गौण गुणों को आत्मनिष्ट कहा है।

इस प्रकार लाक के मत में बाध्य पदार्थ का ज्ञान मूल गुणों के प्रति रूपों और ज्ञाता में उदभूत गौण गुणों का मिश्रण है।

संक्षेप में लोक के अनुसार तीन घटक होते है मन Mind प्रत्यय Idea पदार्थ अथवा वस्तु Objective मन ही ज्ञाता है तथा प्रत्यय ज्ञान के प्रत्यक्ष विषय है। वस्तुओं के मूल गुण हमारी चेतना या मन में अपने समरूप प्रत्यय उत्पन्न करते है अर्थात प्रत्यय विश्व के

पदार्थो या वस्तुओं के प्रतिरूप या अनुकृतियां है। क्योंकि ये मूल गुण किसी पदार्थ में ही रहते है अर्थात पदार्थ ही मूल गुणों का अधिष्ठान होता है। इसलिए मुलगुणों के प्रत्ययों या प्रतिरूपों के प्रत्यय से बाह्य पदार्थो के अस्तित्व का अनुमान कर लिया जाता है। इस प्रकार लांक के अनुसार बाह्य स्वतंत्र नहीं अनुमेय है और उसकी स्वतंत्र सत्ता है। प्रत्यक्ष केवल प्रत्ययों या मूल गुणों के प्रतिरूपों का होता है। ये प्रत्यय या मूलगुणों के प्रतिरूप बाह्य पदार्थ के प्रतिनिधि होते है। अतः लांक ने स्वीकार किया है कि पदार्थो या वस्तुओं का अस्तित्व मन से स्वतंत्र है किन्तु उनका ज्ञान असाक्षात रूप में प्रत्ययों के माध्यम से होता है। क्योंकि बाह्य पदार्थ या वस्तुए प्रत्यक्ष नहीं अनुमेय है और प्रत्यक्ष केवल प्रत्ययों का होता है तथा ये प्रत्यय बाह्य पदार्थ या वस्तुओं के प्रतिनिधि रूप होते है। इसलिए इस सिद्धांत को प्रतिनिधात्मक वास्तववाद कहा जाता है।

प्रत्यक्ष के समय मनुष्य वास्तव में बाह्य पदार्थो के प्रतिरूप Copy या प्रत्यय को ही देखता है। जब ये प्रतिरूप या प्रत्यय बाह्य पदार्थ के समरूप होता है तब प्रतीति सत्य या यथार्थ कही जाती है और जब ऐसा नहीं होता है तब प्रतीति भ्रामक होती है। यथा रज्जुसर्प।

समीक्षा– यद्यपि प्रतिनिधात्मक वास्तववाद, लोक प्रसिद्ध वास्तववाद से अधिक सुचिंतित तथा तर्क युक्त सिद्धांत है तथापि उसमें कई त्रुटियां ऐसी रह गयी है जिनका निराकरण करने में वह सफल नहीं हो सका है।

1. प्रतिनिधात्मक वास्तववाद प्रत्ययारें को पदार्थो के समरूप मानता है किन्तु प्रत्यय तो चेतन या मानसिक हुआ करते है और जगत के पदार्थ अचेतन या अमानसिक होते है। अतः प्रत्यय पदार्थो के अनुरूप कैसे हो सकते है। बर्फले ने भी कहा है कि– जो मानसिक है वह अमानसिक के समान अथवा समरूप नहीं हो सकता।
2. यह मान लेने पर कि प्रत्यय पदार्थो के समरूप होते है एक प्रश्न खड़ा होता है कि– इस समरूपता का ज्ञान कैसे होता है? इस समरूपता का ज्ञान तभी सम्भव हो सकता है, जबकि किसी न किसी अवसर प्रत्यय और पदार्थो का प्रत्यक्ष ज्ञान हुआ हो जिससे उनकी तुलना के आधार पर यह कहा जा सके कि वे एक दूसरे के समान है। लेकिन प्र0 प्र0 यह मानता है कि प्रत्यक्ष केवल प्रत्ययों का होता है पदार्थो का नहीं।
3. बर्फले ने लाक के मूलगुणों और गुणों के भेद को अस्वीकार कर दिया है। इनकी मान्यता है कि मूल गुण और गौण गुण वस्तुओं में साथ–साथ पाये जाते है। वस्तु में जहाँ विस्तार है वही उसका कोई न कोई आकार और रंग भी अवश्य है। अतः एक को आत्मनिष्ठ और दूसरे को विष्यानिष्ठ बतलाना तर्क संगत नहीं है।
4. प्र0 वास्तववाद के अनुसार बाह्य वस्तुओं का प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं होता बल्कि प्रत्ययों के द्वारा उनके अस्तित्व का अनुमान किया जाता है। किन्तु अनुमान का आधार तो

प्रत्यक्ष ही है अर्थात हम उसी वस्तु का अनुमान कर सकते है जिसका प्रत्यक्ष कभी न कभी सम्भव हो सकता है। उदाहरणार्थ यदि अग्नि से धुएं की उत्पत्ति का प्रत्यक्ष ज्ञान कभी प्राप्त न हो तो धुंए का निरीक्षण करके अग्नि का अनुमान करना सम्भव नहीं है। इसी प्रकार बाह्य वस्तुओं का प्रत्यक्ष ज्ञान कभी न होने से प्रत्ययों के आधार पर उसका अनुमान करना सम्भव नहीं है। ऐसी अवस्था में वास्तववाद की इस मान्यता की कि बाह्य वस्तुओं की सत्ता ज्ञाता से स्वतंत्र है, स्थापना नहीं हो सकती। अतः निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते है कि प्रतिनिधात्मक वास्तव वाद की स्थापना में यह सिद्धांत सफल नहीं रहा।

2– नव्य वास्तववाद

लांक के प्रतिनिधात्मक वास्तववाद का स्वाभाविक परिणाम बर्फले के आत्मनिष्ठ प्रत्ययवाद के रूप में हुआ, जिसके अनुसार बाह्य पदार्थो की स्वतंत्र सत्ता नहीं है अपितु वे ज्ञाता के प्रत्यय अथवा विचार मात्र है। नव्य प्रत्ययवाद इस विचारधारा के विरोध मे उत्पन्न हुआ। इसकी स्थापना ज्ञान मीमांसीय प्रत्ययवाद की प्रतिक्रिया के रूप में हुई।

नव्यवास्तव वाद का प्रारम्भिक संकेत हमें जर्मन दार्शनिक श्रेण्टनों (1817–1907) के दर्शन में मिलता है। इसके बाद G.E. मूर रसेल, अलेक्जेंडर और हाईतहेड जैसे दार्शनिकों ने किसी न किसी रूप में इस प्रवृत्ति का समर्थन किया है। नव्यवास्तव वाद के हमें दो उद्देश्य ज्ञात होते है। प्रथम– बर्फले के आत्मनिष्ठ प्रत्यय वाद का खंडन। द्वितीय– बाध्य वस्तुओं की प्राथमिकता को स्वीकार करते हुए मन को अन्य वस्तुओं की भांति प्रकृति का अंग सिद्ध करना। संक्षेप में नव्यवास्तववाद की प्रमुख मान्यताऐ निम्नलिखित है।

1. नव्यवास्तव की मान्यता है कि– ज्ञाता और ज्ञेय में बाह्य सम्बंध है। (External Relation) क्योंकि संसार के सभी पदार्थो को आंतरिक या अंत नहीं कहा जा सकता। शरीर के अवयवों का एक दूसरे से अंतः सम्बंध है। क्योंकि एक के पीड़ित होने से समस्त शरीर व्याकुल हो उठता है। किन्तु इन शरीर के अवयवों का बाह्य पदार्थ से इतना घनिष्ठ सम्बंध नहीं है। उदाहरणार्थ हृदय की बनावट तथा उसकी क्रिया को समझने के लिए समूचे शरीर की रचना का ज्ञान आवश्यक हो सकता है किन्तु उसके लिए सूर्य के तापमान या सरोवर में कमल खिलने के समय ज्ञान आवश्यक नहीं है।
2. सम्बंध बाह्य नहीं अपितु वास्तविक या यथार्थ होते है। यदि हम कहतें है कि राम, श्याम से बड़ा है तो बड़ा होना यह सम्बंध उतना ही स्वाभाविक है जितना राम और श्याम।

3. ज्ञान सम्बंध के बाह्य होने का अर्थ है कि–ज्ञेय की सत्ता आवश्यक नहीं है। यदि संसार के सभी जानने वाले मस्तिष्कों को नष्ट कर दिया जाय तो भी उसका भौतिक जगत पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। नव्यवास्तववादी, जड़वादी या भौतिकवादी है। वे आत्मा को स्वतंत्र सत्ता नहीं मानते। बाह्य जगत का वह अंश जिसके प्रति किसी समय में एक जीवित प्राणी प्रतिक्रिया शील होता है, उसे प्राणी की आत्मा कहा जा सकता है। इस प्रकार आत्मा कुछ प्रत्ययों या विज्ञानों का समूह मात्र है और वे प्रत्यय या विज्ञान बाह्य जगत से भिन्न नहीं है।
4. प्रतिनिधात्मक वास्तववाद मानता है कि– ज्ञान के प्रत्यक्ष विषय प्रत्यय है और इन्हीं प्रत्ययों से यथार्थ वस्तुओं का अनुमान कर लिया जाता है। किन्तु नव्यवास्तववाद के अनुसार–"ज्ञाता को यथार्थ वस्तु का साक्षात ज्ञान होता है। मूर न कहा है कि– जब हम किसी शेर को देखते है तो साक्षात रूप में महसूस करते है कि स्वंय शेर का ज्ञान हो रहा है। शेर के प्रत्यय का नहीं। इस प्रकार सिद्ध होता है कि यथार्थ वस्तु का ही साक्षात ज्ञान होता है या वहीं ज्ञान का विषय बनती है। यहां यथार्थ वस्तु और ज्ञान वस्तु को एक माना जाता है। इसीलिए इसे ज्ञान मीमांसीय एकतत्व वाद कहा जाता है।"

इसी कारण इस सिद्धांत में मन की तुलना प्रकाश से की गयी है। जो बिना किसी माध्यम के यथार्थ वस्तुओं को प्रकाशित कर देता है। जबकि प्रतिनिधात्मक वास्तववाद की तुलना दर्पण से की गयी है जो वस्तुओं को नहीं प्रत्युत उसके प्रतिरूप या चित्र को व्यक्त करता है।

5. नव्यवास्तववादी यह नहीं मानते कि– सम्पूर्ण विश्व एक तंत्र या पद्धति है। वह विश्व को अनेक तंत्रो(System) या पद्धतियों का समूह हो सकता है।
6. लोक प्रसिद्ध वास्तववाद की असफलता का मुख्य कारण था भ्रम की व्याख्या करने में उसकी अक्षमता। अतः नव्य वास्तववादी इस विषय में काफी सचेष्ट प्रतीत होते है। भ्रम की व्याख्या करते हुए होल्ट ने लिखा है कि– भ्रम में एक ही पदार्थ में व्याघाती गुण दिख पड़ते है। जैसे एक छड़ी जो जमीन पर सीधी है पानी में टेढ़ी मालुम पड़ती है। इसका कारण यह है कि प्रकृति में ही व्याघाती नियम है। जिस के कारण पदार्थो में व्याघाती गुणों की प्रतीति होती है। इसलिए होल्ट के अनुसार भ्रम का कारण आत्मनिष्ठ अर्थात हमारे मन के अंदर नहीं बल्कि विषयनिष्ठ है। यही कारण है कि उन्होंने भ्रम और भ्रमों में अनुस्पूत वस्तुओं को मनगढ़त नहीं प्रत्युत विषयनिष्ठ अर्थात वस्तु जगत का अंग माना है।

समीक्षा– नव्यवास्तववाद की कटु आलोचना समीक्षात्मक Critical Realists वास्तववादियों ने की है उनके अनुसारः–

1. यदि भ्रम प्रकृति के व्याघाती नियमों के कारण होता है किन्तु जब किसी पदार्थ पर व्याघाती नियम एक साथ कार्य करते है तो वे व्याघाती गुणों को न उत्पन्न कर एक दूसरे के प्रभाव को समाप्त कर देते है। उदाहरणार्थ दो विपरीत दिशाओं में खिचे जाने पर कोई वस्तु दोनों ओर नहीं चलती बल्कि स्थिर हो जाती है। या जिस ओर खिचाव अधिक होता है उसी ओर चलाय मान होती है। अतः नव्यवास्तववादी भी भ्रम की समुचित व्यवस्था नहीं कर पाता है।
2. नव्यवास्तववादी भौतिक पदार्थो से भिन्न प्रत्ययों या विज्ञानों के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करता। किन्तु हमारे विचार और कल्पनायें भौतिक जगत का भाग नहीं है। साथ ही यदि प्रत्ययों या विज्ञानों की मानसिक सत्ता न मानी जाय तो स्मृति की व्याख्या नहीं हो सकती।
3. लोक प्रसिद्ध वास्तववाद मानता है कि– प्रत्यक्ष पदार्थ का अस्तित्व एक देश काल में है और कल्पित पदार्थो का अस्तित्व भिन्न रूप में। किन्तु नव्यवास्तववाद सभी को एक देश काल में घुसेड़ कर सभी को एक स्तर पर रख देता है। अतः इस प्रकार का मत न तो साधारण व्यक्ति को ग्राह्य हो सकता है और न किसी ज्ञानी को ही।

(3) समीक्षात्मक वास्तववाद– Critical Realism

नव्यवास्तववाद के विवेचन से स्पष्ट होता है कि नव्यवास्तववादी भावी दार्शनिक विचारधारा के लिए एक दुष्ट आधार छोड़ जाने में असमर्थ रहे। वे अपने समय की दार्शनिक प्रणाली को नष्ट करने में कुछ समर्थ अवश्य हुए किन्तु अपने वास्तववाद को कोई ठोस आधार नहीं दे सकें। इस प्रकार नव्यवास्तववाद की एक सम्प्रदाय के रूप में असफलता के कारण एक नये सम्प्रदाय को जन्म हुआ, जिन्हें समीक्षात्मक वास्तववादी कहा जाता है। सात अमेरिकी, दार्शनिक ड्रेक लवण्वाय, प्रैट, रोजर्स, सांतायना, सेलर्स और स्ट्रांग इसके प्रमुख समर्थक माने जाते है। ये सातो विचारक बहुत से प्रश्नों पर आपस में मतभेद रखते हुए भी निम्न सिद्धांतो पर सहमत है। ज्ञाह पदार्थ को दत्त कहा जाता है।

1. मन का इन्द्रिय दत्तों में सीधा सामना होता है और ये इन्द्रिय दत्त ही ज्ञान के वाहक है।
2. भौतिक वस्तुओं का मन से स्वतंत्र अस्तित्व है।
3. भौतिक वस्तुएं उन दत्तों से भिन्न है जिनके द्वारा उनका ज्ञान सम्भव होता है। इन लोगों ने नव्यवास्तवाद वादियों और अपनी विचारधारा को समीक्षात्मक कहा। वस्तुतः इन लोगों के विश्लेशण में ज्ञान के विषयनिष्ठ तथा आत्मनिष्ठ सिद्धांतो का समन्वय करने की चेष्ठा की गयी है।

समीक्षात्मक वास्तववाद का विकास यद्यपि अमेरिका के सात दार्शनिकों द्वारा हुआ तथापि इसका मूल जर्मन मेनांग की रचनाओं में उपलब्ध होता है। मेनांग ने माना है कि– ज्ञान प्रक्रिया में तीन तत्व या घटक हुआ करते है।

1. मानसिक क्रिया– Melytal Act
2. ज्ञान की विषय वस्तु– Content of Knowledge
3. ज्ञान की यथार्थ विषय वस्तु– Objective of Knowledge

मेनांग के अनुसार ज्ञान सम्पादन की क्रिया को मानसिक क्रिया कहा जाता है। ज्ञान प्राप्ति में मन के अंदर एक प्रकार का पदार्थ विधमान रहता है जिसके माध्यम से यथार्थ वस्तु का ज्ञान होता है। इसी पदार्थ को ज्ञान की विषय वस्तु कहा जाता है। प्रत्तेक ज्ञान का संकेत अपने से भिन्न किसी वस्तु या विषय की ओर हुआ करता है। इसीको ज्ञान का विषय या वस्तु– Objective of Knowledge कहते है क्योंकि वस्तुतः इसी वस्तु या विषय का ज्ञान होता है। उदाहरणार्थ– अभी मैं एक वृक्ष देख रहा हूँ इस ज्ञान में देखने के क्रिया मानसिक क्रिया है। बाहर विधमान वृक्ष यथार्थ वस्तु या विषय है और मेरे अंदर जो उसका प्रतीक विधमान है वही ज्ञान की विषय वस्तु Content of Konowledge है।

एक अन्य उदाहरण लिया जा सकता है– "जब हम किसी बात को याद करते है। तब उसके सामने न रहने पर भी उसे स्मरण कर लेते है और इस प्रकार हम जानते है कि उसका ज्ञान हमे होता है।" अतः विषय वस्तु जो हमारे मन में रहता है। मेनांग ने उसे ज्ञान की विषय वस्तु Content of Knowledge कहा है। इस प्रकार ज्ञान प्रक्रिया में तीनों घटकों का योगदान होता है।

मेनांग ने इस त्रिकारक सिद्धांत को समीक्षात्मक वास्तववादियों ने अपना लिया और उस पर अपने सिद्धांत को विकसित किया।

समीक्षात्मक वास्तव वाद भी ज्ञान प्रक्रिया में तीन तत्व या घटक मानता है।

- ज्ञाता (Knower or Mind)
- ज्ञेय (Object as it is)
- ज्ञात पदार्थ या विषय (Object as Known contas) ज्ञाता ही ज्ञान प्राप्त करता है जिस वस्तु का ज्ञान प्राप्त किया जाता है वही ज्ञेय है। ज्ञाता या मन के समक्ष जो पदार्थ या विषय विद्यमान रहता है, उसी को ज्ञात पदार्थ कहा जाता है। इसे दत्त (Datum) भी कहते है क्योंकि ज्ञाता को उसी की उपलब्धि होती है। यथार्थ या वास्तविक पदार्थ की नहीं।

इस सिद्धांत में वास्तविक वस्तु और ज्ञात वस्तु दोनों में द्वैत या भिन्नता पायी जाती है। इसीलिए इसे ज्ञान मीमांसीय द्वैतवाद की संज्ञा दी गयी है। किसी वस्तु के ज्ञान में यथार्थवस्तु मन से स्वतंत्र है, वह मन के अंदर नहीं रहती है। मन के अंदर एक दूसरा ही

पदार्थ रहता है। जो ज्ञान का साक्षात विषय है। वही ज्ञात पदार्थ है। इस प्रकार यथार्थ वस्तु और ज्ञात वस्तु में संख्यात्मक एकता नहीं है। इसीलिए यह मत नव्यवास्तववाद से यहां भिन्न है। क्योंकि वह यथार्थ वस्तु और ज्ञात वस्तु दोनों को एक मानक ज्ञान मीमांसीय एक तत्ववाद का समर्थन करता है।

समीक्षात्मक वास्तववादियों के अनुसार–"यह इन्द्रिय दत्त (ज्ञात पदार्थ) वस्तु का सार या उसको संदेशवाहक है। वस्तु से संदेश लेकर यह हमारे मन को देता है। जिस प्रकार एक चश्मा हमारी आंख नहीं डालता बल्कि सहायक ही होता है। ठीक वहीं हाल इस दून्द्रिय दत्त का भी है। (Sence Datum) यदि वह बाह्य पदार्थ के अनुकूल है तब तो प्रत्यक्ष वास्तविक भ्रांति पूर्ण ज्ञान की उत्पत्ति होगी। जैसे सीप में चांदी का ज्ञान भ्रांति पूर्ण है। क्योंकि दत्त अर्थात मन के समक्ष विधमान पदार्थ चांदी है जबकि यथार्थ या वास्तविक पदार्थ सीप है।

समीक्षात्मक वास्तववादियों का दावाा है कि उनका मत नवीन विज्ञान के अनुकूल है। इसलिए वे इसे वैज्ञानिक वास्तववाद की संज्ञा देते है।"

समीक्षा–

1. समीक्षात्मक वास्तववाद, प्रत्ययवाद और वास्तववाद के समन्वय को प्रयत्न है। उसकी यह धारणा कि भौतिक पदार्थ और मन के बीच की एक स्थिति होती है जिसे वह इन्द्रिय दत्त कहता है। निःसंदेह यह धारणा नव्यवास्तववादियों की धारणा से जो बीच की स्थिति मानता ही नहीं अधिक उपयुक्त है। किन्तु समीक्षात्मक वास्तववाद इस बात को स्पष्ट नहीं कर पाया है कि– इस इन्द्रिय दत्त का स्वरूप क्या है? यदि हम समीक्षात्मक वास्तववाद को तार्किक कसौटी पर कसे तो अंततोगत्वा वह प्रत्ययवाद का ही एक रूपान्तर सिद्ध होगा।
2. लाक के प्रतिनिधात्मक वास्तववाद की तरह इसमें भी वे दोष मिलते है कि–"मानव का मन यथार्थ वस्तु तक नहीं पहुंच सकता वह तो केवल वस्तु के प्रतिरूप या प्रत्यय या संदेश को जान सकता है। अतः यह प्रत्ययवादी प्रवृत्ति का ही द्योतक है। इस प्रकार यह वाद भी वस्तु की यथार्थ प्रवृत्ति के ज्ञान की क्रिया समझाने में सफल नहीं माना जा सकता।"
3. भ्रम की उत्पत्ति क्यों होती है? इस प्रश्न के समाधान के लिए समीक्षात्मक वास्तववादियों के पास कोई उत्तर नहीं हे। वे मानते है कि समस्त इन्द्रिय दत्तों की उत्पत्ति यथार्थ वस्तुओं से होती है और जो उनके अनुकूल नहीं होती है वे भ्रांतिपूर्ण कहे जाते है? किन्तु जब सभी इन्द्रि दत्तो की उत्पत्ति यथार्थ वस्तुओं से होती है तो क्या कारण है कि कोई उनके प्रतिकूल इन कठिनाईयों को कोई समुचित समाधान समीक्षात्मक वास्तववाद के पास नहीं जान पड़ता।

———————————————

व्यवहार–

परिचय– अर्थ क्रियावाद "Progmatism" का हिन्दी रूपान्तर है जिसे व्यवहारवाद फलवाद प्रयोगवाद भी कहा जाता है। Progmatism शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम चार्ल्स पिपर्स ने किया था। यह ग्रीक भाषा के प्रैगमा (Pragma) से बना है जिस का अर्थ– क्रिया अथवा व्यवहार होता है पियर्स के इस सिद्धांत का उपयोग आगे चलकर जेम्स ने सत्य के परीक्षण के लिए किया। जान डी0वी0 ने भी इसके विकसित किया।

यह कोई व्यवस्थित दार्शनिक विचारधारा नहीं है। इसके विचारकों की मान्यता है कि जो दर्शन या विचार हमें जीवन को वास्तविकताओं से अलग रखता है केवल बुद्धि विलास व तर्कजाल फैलता है तथा जीवन की गुत्थियां नहीं सुलझता वह वास्तव में दर्शन नहीं। यह केवल व्यवहारिक जीवन को ही महत्व देता है।

व्यवहारवाद या अर्थ क्रियावाद– Progmatism

व्यवहारिकतावाद कोई विशेष दार्शनिक पद्धति नहीं है वरन् यह दर्शन के प्रति एक मानसिक अभिवृत्ति है अथवा दार्शनिक समस्याओं को सुलझाने की एक विशेष प्रवृत्ति है। मुख्यतः अमेरिका में उत्पन्न तथा विकसित होने के कारण हम इस एक दृष्टिकोण से विशुद्ध अमरीकी धारा कह सकते है। अमेरिका में व्यवहारिकता वाद के विकास के इतिहास में चार व्यक्तियों के नाम विशेष प्रसिद्ध रहे हैं चार्ल्स सेडर्सपियर्स, विलियम जेम्स, जार्ज हर्षर्टमीट तथा जॉन डीवी।

इन व्यवहारिकतावादी दार्शनिकों के चिंतन का उद्देश्य पृथक–पृथक रहा है। उन्होंने एक व्यवस्थित दर्शन पद्धति निर्मित करने का प्रयास किया। जीवन तथा जगत के प्रति उनका विशिष्ट दृष्टिकोण है। यही उनका दर्शन है। व्यवहारिकतावादी दार्शनिकों की रचनाओं में दर्शन की अन्य पद्धतियों की कर आलोचना भरी पड़ी है। अतः स्वंय व्यवहारिकता की कोई परिभाषा देना सरल नहीं है।

इस प्रवृत्ति में परम्परागत दार्शनिक मान्यताओं से सम्बंध विच्छेद करने का आग्रह होता है। यही नही उसमें शताब्दियों की परम्परा को भंग कर मानव के मन का महत्व कम कर दिया गया है और डार्विन के बाद विकसित होने वाली जीव–विज्ञान सम्बंधी परिवर्तन तथा विकास की मान्यताओं को प्रमुख स्थान दिया गया है।

व्यवहारिकता वादियों के अनुसार–"जो दर्शन बुद्धि तथा तर्क के आधार पर हमें यथार्थ जीवन से अलग ले जाना चाहता है उसे दर्शन कहा ही नहीं जा सकता।"

उनकी दृष्टि से दर्शन उसे कहा जायेगा। जो जीवन की गुत्थियां सुलझने में हमारी सहायता करे, हमारे अनुभव तथा व्यवहार को परिभाषित बनाऐ। अतः दर्शन का उपयोग

दर्शन के लिए नहीं प्रत्युत जीवन के लिए है। अन्य शब्दों में हमारा चिंतन जीवन के लिए होना चाहिए।

पुनः इनकी धारणा है कि– जगत पूर्ण रूप से बना–बनाया तैयार नहीं हे जिसमें कोई परिवर्तन नहीं हो सकता। उसका तो मानव अपने विश्वासों और आदर्शो द्वारा पुर्ननिर्माण करता है। समस्त दर्शन मानवता के लिए है। मानवता पर अधिक बल देने के कारण इसे मानवतावाद भी कहा जाता है। पियर्स के अनुसार–"किसी शब्द या वाक्य का अर्थ ह्रदयं गम करने के लिए हमें पूछना चाहिए कि वह हमारे व्यवहारिक जीवन के लिए क्या महत्व रखता है। अर्थात जिस कथन को मानने या न मानने से हमारे व्यवहार पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता वह कथन निरर्थक है।"

ज्ञान की व्यवहारिकतावादी प्रणाली पहले यह निश्चय करती है कि–"प्रत्यय का अर्थ क्या है? यह निर्णय शतथ्य का अवलोकर करके किया जाता है। यदि प्रत्यय सत है तो उस तथ्य की सत्ता अवश्य होनी चाहिए। जिसका प्रत्यय हमारे विचाराधीन है। इसके बाद प्रयोग या निरीक्षण करके उन तथ्यों की सत्ता स्थापित की जाती है। यदि तथ्य की सत्ता है तो प्रत्यय भी सत होगा।"

जेम्स ने यथार्थ ज्ञान के विवेचन में विशेषकर दो बातों पर बल दिया है। प्रथम– हमारा ज्ञान सदैव हमारी अभिरूचि और व्यवहारिक उद्देश्यों को प्रतिफलित करता है। हम ज्ञान का सम्पादन इसलिए करते है कि संसार में हमारे कुछ प्रयोजन है।

द्वितीय– हमारी अनुभूति असम्बद्ध संवेदनों या वस्तुओं का ही नहीं–वस्तुओं के सम्बंधों का भी ग्रहण करती है।

जेम्स का मत है कि– हमारे प्रत्यय वस्तुओं की अनुकृति रूप या प्रतिरूप नहीं हेाते। प्रश्न उठता है कि फिर प्रत्यय का क्या अर्थ होता है? जेम्स के अनुसार वस्तु के प्रत्यय का अर्थ उस वस्तु से प्रवाहित होने वाले परिणम है। वे संवेदन जिनकी हम आशा करते है, जैसे– अग्नि से ताप की और प्रतिक्रियाएं जिनके लिए हमें तैयार रहना चाहिए, जैस ठंढक से अग्नि के पास जाना। उस प्रत्ययको हम सत्य कहेंगे, जिसे स्वीकार करके हमारी आशायें पूरी होती है और हमारी प्रतिक्रियाएं सफलता का लाभ करती है। इसलिए हम कह सकते है कि सत्य या यथार्थ प्रत्यय वह प्रत्यय है जिसके अनुसार व्यापार करने या क्रियाशील होने में सफलता मिलती है।

व्यवहारिकतवादी दृष्टि परम तत्वों, मूल सिद्धांतो आदि की ओर न देखकर चरम परिमति निष्कर्ष, फल अथवा तथ्य की ओर देखती है। सत्य तो यह है कि व्यवहारिकवाद ने दर्शन को दार्शनिकों का विषय नहीं रहने दिया और उसे मनुष्यों की समस्याओं के समाधान का साधन बना दिया। व्यवहारिकतावादी दृष्टिकोण के अनुसार किसी भी सिद्धांत को परीक्षण उसके परिणामों का मूल्यांकन करने से ही संभव है।

विधि तथा कानून के क्षेत्र में भी व्यवहारिकता वाद ने पर्याप्त समस्याओं पर विचार किया है। उनका मत है कि जीवन की व्यवस्था कानून के अनुसार नहीं बनायी जा सकती। उसमें अनुभव की आवश्यकता है। कोई भी न्यायाधीश कानून की व्याख्या उसके (कानून) शब्दों के द्वारा नहीं बल्कि उसके सामाजिक परिणामों के अनुभव से कर सकता है।

इसी प्रकार जीवन को अन्य समस्याओं पर भी व्यवहारिकता वाद ने विचार किया है और लाभप्रद परिणाम निकाले है।

समीक्षा–

1. उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि– व्यवहारिकतावाद तत्व दर्शन की कोई विकसित पद्धति नहीं है क्योंकि यह प्रत्ययवाद, भौतिकवाद तथा वास्तववाद आदि पद्धतियों की भांति व्यवस्थित नहीं हे। इसलिए यह दर्शन को एक दूसरे दृष्टिकोण से ही समझाने का प्रयास करता है।
2. इन विचारकों ने तत्व दर्शन पर अधिक विचार करना उपयुक्त नहीं समझा तथा वे सत्य का कोई स्थिर स्वरूप स्थापित नहीं कर पाये।
3. व्यवहारिकता सफलता ही सत्य की कसौटी है। यह व्यावहारिकतावाद को उपयोगितावाद में परिणत कर देता है। जिससे सत्यं, शिवं और सुन्दरं जैस आदर्श गौण पड़ जाते है क्योंकि जिससे वर्तमान में काम चल रहा है, जो हमारे कुछ काल तक के लिए उपयोगी हे उसी को हम परम सत्य मान बैठते है।
4. व्यावहाकरतावाद के अनुसार प्रत्तेक व्यक्ति का दर्शन, उसके स्वभाव परिस्थितियों और आवश्यकताओं के उपर निर्भर करता है। अतः इसलिए एक सामान्य दर्शन और एक परम सत्य सम्भव नहीं है।

इस प्रकार सत्य एक सापेक्ष वस्तु बन जाता है और उसकी निर्पेक्षता नष्ट हो जाती है। ऐसी अवस्था में व्यावहारिकतावाद के निर्णयों और उपलब्धियों में हमारी आस्था नहीं रह जाती है और हम सोचने लगते है कि– व्यावहारिकतावाद जिस निष्कर्ष पर पहुंचा है। वह भी कालान्तर में बदल सकता है। अतः इसकी ज्ञान प्रणाली स्वंय अपने के लिए घ्यातक है।

निष्कर्षतः व्यावहारिकतावाद तर्क बुद्धि के एकांत्रिक महत्व के विरूद्ध प्रतिक्रिया है और व्यावहारिकतावादी अपने को यथार्थजीवन की समस्याओं को सुलझाने में ही नियोजित कर लेते है।

सत्य का व्यावहारिकता परक सिद्धांत– प्रमा या सत्यज्ञान क्या है? इस प्रश्न पर पाश्चात्य तथा भारतीय दार्शनिकों ने प्रकाश डालने का पुरजोर प्रयास किया है। पाश्चात्य व्यावहारिकतावादी दृष्टिकोण के अनुसार– साधारण मनुष्य भी किसी ज्ञान या निर्णय को निरीक्षण तथा परीक्षण द्वारा ही सत्य सा असत्य कहते है। किसी मकान के कोने में वस्तुतः रस्सी है या सांप इसका निर्णय उस कोने में जाकर उस वस्तु को टटोलने पर ही हो

सकेगा। कहने का तात्पर्य है कि व्यावहारिक अनुभव ही बता सकता है कि क्या सत्य है और क्या असत्य।

इस प्रकार के अनुभवों के आधार पर अमरीकी व्यावहारिकवादी दार्शनिकों ने इस सिद्धांत का प्रतिपादन किया है कि सत्य का परीक्षण उसके (सत्य) मानव जीवन पर प्रभाव या परिणाम देखने पर ही किया जा सकता है।

व्यावहारिकवाद की मान्यता है कि न तो कोई निर्पेक्ष सत है और न कोई शाश्वत सत्य ही। विलियम जेम्स का मत है कि सत्य हमारे मानवीय प्रत्ययों और हमारे शेष अनुभव के मध्य एक सम्बंध मात्र है। बाहर संसार में पहले से ही विद्यमान कोई सत्य नहीं है जिसे हम ढूंढ़ते फिरे। इसके विपरीत वास्तविकता यह है कि मनुष्य स्वंय सत्य की रचना करता है। मनुष्य के उद्‌देश्य और जगत के मध्य जब सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास होता है तो सत्य की उत्पत्ति होती है। उदाहरणार्थ– हम सभी स्वार्थ की बात करत है। क्या स्वस्थ शरीर में स्वास्थ्य जैसा कोई पदार्थ है। जो ठीक–ठीक रक्त का संचार करता है। भोजन को पचाता है तथा शरीर को क्रिया शील बनाता है अर्थात नहीं ऐसा नहीं है। स्वास्थ्य उसे कहा जाता है जो इस बात का संकेत करता है कि शरीर के समस्त अवयव उचित रूप से परिचालित होते है। ठीक इसी प्रकार हमारे विचारों और प्रत्ययों को समुचित व्यापार सत्य कहलाता है।

विलियम जेम्स का मत है कि– प्रत्तेक सत्य को व्यवहारिक कसौटी पर कसा जा सकता है। क्योंकि समस्त वास्तविकताएं हमारे व्यवहार या क्रियाओं को प्रमाणित करती है। जिस तत्व को मानने या न मानने से हमारे व्यवहार पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, वह वास्तव में हमारे लिए सत्य या मिथ्या नहीं है।

पुनः जेम्स ने विचार व्यक्त किया है कि– "सत्य का अर्थ उसके उपयोग अथवा लाभ से जुड़ा हुआ है। किसी भी विचार अथवा प्रत्यय को उसके उपयोगी होने का कारण सत्य कहा जा सकता है। दूसरे शब्दों में सत्य वहीं है जो व्यवहारिक कसौटी पर खरा उतरता है। किसी विचार की सत्यता जानने के लिए हमें पता लगाना होगा कि उसका ठोस परिणाम किसी के जीवन पर कैसा पड़ेगा।"

जेम्स इसे इन्द्रियानुभवादी क्षेत्र में सत्य का नकद मूल्य कहा है। व इसका तात्पर्य यह है कि– कोई भी प्रत्यय या विचार आरम्भ से ही सत्य मिथ्या नहीं हुआ करता व्यवहारिक सफलता द्वारा परीक्षा हो जाने के बाद ही वह सत्य बनता है।

जहाँ साक्षात व्यावहारिक परीक्षण समीव नही, वहाँ प्रत्यय विशेष या कथन विशेष की सत्यता का निर्णय मनुष्य की नैतिक एवं भावना मूलक मांगो द्वारा होना चाहिए। कान्ट ने कहा था कि–ईश्वर में विश्वास हमारी नैतिक आवश्यकता है। जेम्स भी कहते है कि यदि हमारा हृदय और हमारे नैतिक प्रयत्न ईश्वर की अपेक्षा करते हे तो हमें ईश्वर में विश्वास करना चाहिए।

समीक्षा–

यद्यपि व्यावहारिकतावादियों ने व्यावहारिक परीक्षण द्वारा सत्य को ढूंढ़ने के प्रयत्न में कुछ पते की बाते अवश्य कहीं है, किन्तु फिर भी सत्य विषयक इस सिद्धांत को निर्दोष नहीं कहा जा सकता। इसकी मुख्य कमियां निम्न है।

1. जेम्स का मत है कि जहाँ निश्चय करने की कोई अन्य विधि न हो, वहाँ भावनात्मक संतोष को निर्णायक बनाना चाहिए। इस का अर्थ तो यह भी हो सकता है कि जिन अन्ध विश्वासों से मनुष्य को अभी तक संतोष मिलता रहा है, उसकी सत्यता में किसी प्रकार का संशय नहीं करना चाहिए।

———————————————————

तार्कीय प्रत्यक्षवाद– Logical Positivism

जिस दार्शनिक विचारधारा में दार्शनिक विचार विज्ञान के आधार किया जाता है, दार्शनिक प्रत्ययों का अच्छी तरह से तार्किक विश्लेषण किया जाता है तथा तार्किक विश्लेषण द्वारा चिंतन में त्रुटियों का पता लगाया जाता है तथा उन दार्शनिक सिद्धांतो को त्याग दिया जाता है जो तार्किक दृष्टिकोण से उपयुक्त नहीं है, उसे ही तार्कीय प्रत्यक्षवाद अथवा तार्किक व्यवहारवाद कहा जाता है।

बीसवीं शदीं में तार्कीय प्रत्यक्षवादियों ने दर्शन शास्त्र के क्षेत्र में एक बड़ी भारी क्रांति उत्पन्न की है। इस दार्शनिक विचारधारा केन्द्र बियना था, जहाँ इस दार्शनिक विचार धारा पर विचार विमर्श होता था, जिसे बियना सर्किल के नाम से जाना जाता है। बियना सर्किल के मुख्य कर्णधार मौरिस श्लिक, रूणाल्फ कार्णय, आरोन्यूराथ तथा लुगविग विडगेस्ताईन थे।

तार्कीय प्रत्यक्षवादियों ने प्राचीन काल के दर्शन शास्त्र को अर्थहीन एवं अनुपयोगी बताया है। उन्होंने प्राचीन एवं परम्परागत दार्शनिक सिद्धांतो की कही आलोचना की जिसके फलस्वरूप तत्वदर्शन का ढांचा ही टूट गया। उन्होंने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया ाकि तत्व दर्शन में जितनी भी प्रतिज्ञप्तियां (Propositions) है वे सभी अर्थहीन है। अतः अधिकतर परम्परागत तत्वमीमांसाको का सिद्धांत अर्थहीन है। इसका कारण यह है कि तत्वमीमांसा न तो तर्कशास्त्र पर और न ही वैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित है। तत्वमीमांसा के प्रत्यय अनुभवों पर आधारित न होने के कारण व्यवहारिक दृष्टिकोण में अर्थहीन होते है। उल्लेखनीय है कि तार्कीय प्रत्यक्षवादियों ने अनुभव को ज्ञान प्राप्त करने का सर्वोत्तम साधन बनाया है। बियना सर्किल के भी सभी सदस्य इस एक बात पर सहमत थे कि तत्व मीमांसा के सारे प्रत्ययों को अस्वीकार करना उचित है। उन्होंने परम्परागत तत्व मीमांसा–(ईश्वर, आत्मा, स्वर्ग, मोक्ष) के स्थान पर तर्क शास्त्र गठित एवं विज्ञान के प्रत्ययों को प्रयोग में लाना उचित समझा। उन्होंने निर्पेक्ष चिंतन के लिए मन से कट्टरता को निकाल देने को उचित समझा। उन सबका एक मात्र मुख्य लक्ष्य यह था कि सबके सम्मिलित प्रत्यन से स्पष्ट ज्ञान किस तरह से प्राप्त किया जा सकता है। इनके अनुसार जो प्रत्यय अनुभवातीत है उनका निकर्षण नहीं किया जा सकता। अतः दार्शनिक दृष्टिकोण से उन प्रत्ययों का प्रयोग करना उचित नहीं है। अतः अनुभव ही ज्ञान प्राप्ति का एक मात्र साधन है।

अधिकतर दार्शनिकों ने तार्कीय प्रत्यक्षवाद की निम्नलिखित विशेषताओं के स्वीकार किया हैः–

1. तत्व मीमांसा की समस्याओं पर दार्शनिक विचार करने से कोई लाभ नहीं हो सकता, क्योंकि इसकी सभी प्रतिज्ञप्तियां अर्थ हीन है।

2. प्रत्ययों की यथार्थता को जानने के लिए उनका तार्किक विश्लेषण करना अत्यंत आवश्यक है।
3. तर्कशास्त्र गणित एवं वैज्ञानिक विधि ज्ञान प्राप्त करने के यथार्थ साधन है।
4. मानव जीवन के मूल्य मानव द्वारा बनाये गये है।

लुडविग विट गेस्ताईन–(1889–1951)

बियना सर्किल पर विटगेस्टाईन का प्रभाव सबसे अधिक पड़ा। इनकी मान्यता थी कि दर्शन शास्त्र का लक्ष्य यह है कि दार्शनिक विचारों को स्पष्ट रूप से व्यक्त किया जाये। दर्शन शास्त्र में सिद्धांत रचना नहीं की जाती बल्कि इसमें केवल विचारों का स्पष्टीकरण किया जाता है। वस्तुतः परम्परागत दार्शनिक सिद्धांतो के संदर्भ में एक बड़ा भारी क्रांतिकारी विचार है। जिसे विटगेस्टाईन ने तार्कीय प्रत्यक्षवादियों के सम्मुख रखा था।

(1) भाषा का दर्शन– (Philosophy of Language)– विटगेस्टाईन के अनुसाार– दर्शन शास्त्र में त्रुटियां इसिलए होती है कि उसमें जो भाषा प्रयोग में लायी जाती है। वह अत्यंत अधूरी एवं भ्रांति पूर्ण होती है। तत्व मीमांसा में जो प्रतिज्ञप्तियां पायी जाती है वे सभी आभासी प्रतिज्ञप्तियां होती है। ये आभासी प्रतिज्ञप्तियां (Pseudo Sentences) भ्रांतियों से भरपूर होती है। उसका कारण यह है कि तत्व मीमांसा में जो भाषा प्रयोग में लायी जाती है। वह बहुत दोषयुक्त होती है।

किसी भी भाषा में जो शब्दावली पायी जाती है उसमें प्रत्तेक शब्द का कुछ विशेष अर्थ होता है। जिस शब्द का कोई भी अर्थ नहीं है वह अर्थहीन ध्वनि है। भाषा का अर्थ उस स्थिति में यथार्थ समझा जाता है। जब भाषा एवं जगत के वास्तविक तथ्यों में सहसम्बंध पाया जाता है। किन्तु जिस स्थिति में भाषा जगत की घटनाओं का यथार्थ रूप से निरूपण नहीं कर पाती, उस समय भाषा को विकृत समझना चाहिए क्योंकि वह तत्व की विकृत रूप से व्याख्या करती है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि– वहीं प्रतिज्ञप्तियां यथार्थ है जो जगत के तथ्यों को निरूपित करती है।

विटगेस्टाईन के अनुसार– तार्किक दृष्टिकोण से आदर्श भाषा में यथार्थ प्रतीकों Accurate Symbols को प्रयोग में लाया जाता है। जब यथार्थ प्रतीकों को प्रयोग में नहीं लाया जाता, तब दार्शनिक विचारों में त्रुटियां स्पष्ट हो जाती है। इस विश्व की प्रत्तेक वस्तु के संदर्भ में एक विशेष प्रतीक को प्रयोग में लाना चाहिए। किन्तु वास्तव में ऐसा होता है कि जो भाषा हम प्रयोग में लाते है। वह प्रायः अस्पष्ट एवं अधूरी होती है। यहीं कारण है कि हमारी उक्तियां स्पष्ट नहीं हो पाती।

विटगेस्टाईन ने कहा है कि– तार्किक दृष्टिकोण से प्रतिज्ञप्तियों को बहुत ही स्पष्ट एवं परिशुद्ध भाषा में व्यक्त करना चाहिए। उसके अनुसार यदि भाषा विकास के नियमों का पालन किया जाय तो भाषा में त्रुटियों को दूर किया जा सकता है।

विटगेस्टाइन ने जगत के तथ्यों (Facts) एवं वस्तुओं में अंतर बताया है। उदाहरण के लिए गुलाब का फूल एक वस्तु है और गुलदस्ता भी एक वस्तु ही है। किन्तु गुलाब का फूल गुलदस्ते में है यह एक तथ्य है। इस प्रकार समस्त विश्व तथ्यों का बना हुआ है। किसी भी तथ्य में विभिन्न वस्तुओं के सम्बंध को निरूपित किया जा सकता है। इस तथ्य का एक तार्किक चित्र Logical Picture बनाया जा सकता है। यही कारण है कि तथ्य Fact एवं तार्किक चित्र में सह सम्बंध पाया जाता है।

सारा विश्व तथ्यों का बना हुआ है तथ्यों को चित्र की भाषा कहा जा सकता है। चित्र ही तथ्यों को निरूपित करते है। तथ्य के तार्किक चित्र को विचार कहा जा सकता है।

मानव जगत के विषय में जितने भी चित्र बनाता है वे वास्तव में यथार्थ तथ्यों को ही निरूपित करते है। किन्तु यह चित्र फोटो अथवा माडल की तरह नहीं होता। यह चित्र तार्किक Logical होता है। तार्किक चित्र में चित्र के विभिन्न अंशों में तार्किक सम्पर्क होता है अर्थात ये अंश एक दूसरे के साथ कुछ नियतों के अनुसार सम्बंधित होते है। उदाहरणार्थ– जिस प्रकार संगीत की स्वरलिपि में तार्किक सम्बंध होता है और स्वरलिपि और संगीत के स्वरों में सम्बंध हेाता है उसी प्रकार चित्र और जगत के तथ्यों में अंतर सम्बंध होता है।

जिस प्रकार संगीत की स्वरलिपि संरचना में तार्किक योजना दिखाई पड़ती है। इसी प्रकार जगत की चित्र संरचना से भी तार्किक दृष्टिकोण से अन्तर सम्बंध उसके अंशों में दीखता है।

विटगिस्टाईन के अनुसार भाषा का मुख्य कार्य चित्र बनाना है। वास्तव में चिंतन तर्क एवं चित्रण 'Picturing' में बहुत गहरा एवं निकट का सम्पर्क है। इन तीनों में तादात्म्य सम्बंध है। चित्र के साथ तत्व की भी समरूपता है। प्रतिज्ञप्तियों (तथ्य) चित्र द्वारा तत्व के स्वरूप को निरूपित करती है। तत्व वैसा ही होता है जैसा कि चित्र निरूपित करता है।

निष्कर्षतः विटगेस्टाईन के तार्किक चित्र का मुख्य कार्य यह है कि– वह विचार को व्यक्त करे। विचार को ही चित्र कहा जा सकता है यद्यपि यह चित्र मानसिक है। भाषा विचाररूपी चित्र को ही व्यक्त करती है।

चित्र को जगत का प्रतिरूप या (मांडल) कहा जा सकता है। इस प्रतिरूप को विचार के लिए तर्क की कसौटी पर चढ़ाया जाता है जिससे यह पता चल सके कि प्रतिरूप वास्तव में यथार्थ है या नहीं। चित्र एक मानसिक क्रिया है जिसके निरूपण के

लिए वह भाषा के माध्यम से व्यक्त किया जाता है। वह चित्र यथार्थ है जब भाषा चित्र एवं जगत की संरचना में समरूपता पायी जाती है।

हमारे मन में जगत के तथ्यों के बारे में जो विचार उत्पन्न होते है उन्हें चित्र कहा जाता है। यह विचार रूपी चित्र भाषा के माध्यम से व्यक्त की जाती है।

(2) दर्शन शास्त्र का कार्यः–

विटगिस्टाईन के अनुसार– दर्शन शास्त्र का मुख्य कार्य प्रतिज्ञप्तियों का स्पष्टीकरण करना है। परम्परागत दर्शन शास्त्र का मुख्य दोष यह था कि उसमें जो प्रतिज्ञप्तियां प्रयोग में लायी जाती थी वे भाषा के दृष्टिकोण से अस्पष्ट थी। अतः दर्शन शास्त्र का मुख्य कार्य यह है कि वह भाषा की अस्पष्टता को दूर करे और प्रतिज्ञप्तियों के अर्थ का स्पष्टीकरण करे।

दूसरे परम्परागत दार्शनिक उन सत्ताओं के विषय में उक्तियां करते थे जो वैज्ञानिक तथ्यों से भिन्न है और तर्क की कसौटी पर उनका कोई औचित्य नहीं ठहराता। जबकि वसतुतः दर्शन शास्त्र का मुख्य कार्य– विचारों का तार्किक स्पष्टीकरण करना है। Pholophy aim is the logical clarification of Thoughts.

दर्शन शास्त्र में केवल विज्ञान की प्रतिज्ञप्तियों का तार्किक भाषा की सहायता से स्पष्टीकरण किया जाता है। (न कि तत्व मीमांसा की) जिन प्रतिज्ञप्तियां का विज्ञान के क्षेत्र से सम्पर्क नहीं है उनके विषय में स्पष्ट रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

विटगेस्टाइन का मत है कि दर्शन शास्त्र में केवल उतना ही कहना उचित है जितना स्पष्ट रूप से कहा जा सके। दार्शनिक का सारा ध्यान भाषा की स्पष्टता और तर्क की संगति की ओर होना चाहिए। जो बात स्पष्ट रूप से नहीं कही जा सकती वहाँ चुप रहना ही उचित है।

आप के अनुसार दर्शन शास्त्र के नियम तथा उनके प्रयोग में बहुत गहरा सम्पर्क है। दर्शनशास्त्र में यह दिखलाने का प्रयत्न किया जाता है कि वे प्रश्न कौन से है जिनमें भाषा का गलत प्रयोग किया गया है। जिन समस्याओं में त्रुटि युक्त भाषा के प्रयोग के कारण भ्रांतिपूर्ण सिद्धियां होती है। उन्हें त्याग दिया जाता है। दार्शनिक विचार द्वारा दर्शनशास्त्र की गलत समस्याओं को परित्योग किया जाता है।

मूल्यांकन– यद्यपि दर्शन शास्त्र पर विटगेस्टाईन का प्रभाव विशेष रूप से पड़ा और दर्शन शास्त्र में बहुत सी भाषा की अशुद्धियां विटगेस्टाईन तथा तार्कीय प्रत्यक्षवादियों न दूर किये। किन्तु विटगिस्टाईन के दार्शनिक विचारों में कमी यह है कि उनका मत नकारात्मक है। उनके दार्शनिक विचारों में सकारात्मकता का अभाव है। आप ने विश्व में वास्तविक

तथ्यों को बहुत महत्व दिया। उन्होंने भौतिक जगत को ही एक मात्र चरम तत्व के रूप में स्वीकार किया है। परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। विश्व में मूल्यों का भी अस्तित्व एवं मूल्यों का वैज्ञानिक विश्लेषण नहीं किया जा सकता। उनका परिबोधन किया जा सकता है। शुद्ध चेतना अथवा अंतः प्रज्ञा के माध्यम से मूल्यों का परिबोधन किया जाता है।

दूसरे विटगेस्टाईन ने विज्ञान को अत्यधिक महत्व प्रदान कर दर्शन शास्त्र को विज्ञान का दास बना दियां आप के अनुसार– दर्शनशास्त्र का मुख्य कार्य विज्ञान की प्रतिज्ञप्तियों का भाषा के दृष्टिकोण से परिशोधन करना है।

तीसरे विटगेस्टाईन ने इस बात पर अत्यधिक बल दिया है कि विचार को व्यक्त करने के लिए कथित अथवा लिखित भाषा का प्रयोग अत्यंत आवश्यक है। इनकों इस बात का ज्ञान नहीं था कि–"ज्ञान की बहुत उन्नत दशा में विचार को व्यक्त करने के लिए भाषा का प्रयोग अत्यंत आवश्यक नहीं होता। दो माधक अथवा साधक भाषा के प्रयोग के बिना ही विचार विनिमय कर लेते है।"

चौथे– विटगेस्टाईन दर्शनशास्त्र के मात्र एक पक्ष तर्क शास्त्र को मानते है। दूसरे पक्ष रचनात्मक पक्ष को कतई नहीं स्वीकार करते। आप के अनुसार दर्शनशास्त्र मात्र विज्ञान का तर्क शास्त्र है।

वस्तुतः दर्शनशास्त्र का रचनात्मक पक्ष भी होता है। रचनात्मक पक्ष के कारण ही मानव जाति की प्रगति हुई है।

पांचवां दोष यह है कि– आप ने दर्शनशास्त्र का मुख्य कार्य तार्किक दृष्टिकोण से भाषा का विश्लेषण करना ही माना है। उन्होंने दर्शनशास्त्र के क्षेत्र में अंतः प्रज्ञा को कुछ भी महत्व नहीं दिया है। किन्तु अंतः प्रज्ञा दर्शनशास्त्र के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण विधि है। यथार्थ ज्ञान की झलक अंतः प्रज्ञा से ही मिलती है।

इस प्रकार विटगेस्टाईन ने अंतः प्रज्ञा के महत्व को दर्शन शास्त्र के क्षेत्र में अस्वीकार करके दर्शन शास्त्र के महत्व को बहुत ही घटा दिया।

जिनका वैज्ञानिक विधि द्वारा सत्यापन किया गया है। प्रो0 W. विजमैन ने कहा है कि केवल उन्ही प्रत्ययों को यथार्थ कहा जा सकता है जिनका वैज्ञानिक विधि द्वारा सत्यापन किया गया है और वे प्रत्यय निरर्थक है। जिनको वैज्ञानिक प्रणाली द्वारा मापा नहीं जा सकता है। श्लिक के अनुसार– केवल वहीं प्रतिज्ञप्तियां पूर्ण रूप से अर्थ पूर्ण है जिनका साक्षात प्रत्यक्ष द्वारा निकर्षण किया जा सकता है।

एयर का विचार है कि– यदि निकर्षण को केवल मात्र साक्षात प्रत्यक्ष द्वारा निकर्षण के अर्थ में स्वीकार किया जाये तो विज्ञान की अनेक प्रतिज्ञप्तियों को निरर्थक समझना होगा। किन्तु ऐसा सोचना उचित नहीं होगा। इसलिए एयर ने कहा है कि विज्ञान की वे

प्रतिज्ञप्तियां जिनका साक्षात प्रत्यक्ष द्वारा निकर्षण नहीं किया जा सकता, दुर्बल अर्थ निकर्षण कहीं जा सकती है।

अंतः एयर के अनुसार ज्ञान को अर्थपूर्ण समझा जा सकता है जो अनुभवाश्रित है। केवल परिकल्पित प्रतिज्ञप्तियों पर ज्ञान को आधारित नहीं किया जा सकता। यथार्थ ज्ञान अनिवार्य रूप से अनुभवाश्रित होता है।

मूल्यांकन–

1. तार्कीय प्रत्यक्षवादियों ने दर्शन शास्त्र की स्वतंत्रता को नष्ट कर उसे केवल विज्ञान का दास बना दिया। क्योंकि इनके अनुसार केवल उन्हीं उक्तियों को यथार्थ समझा जा सकता है जिनका वैज्ञानिक विधि द्वारा निकर्षण किया जा सके।
2. इन लोगों ने आमूल अनुभववाद पर अत्यधिक बल दिया जो उनके दार्शनिक सिद्धांत में अपर्याप्ता तथा दुर्बलता का कारण है। क्योंकि अनुभववाद का पर्यावसान नास्तिकता तथा अज्ञेयता में होता है।
3. तार्कीय प्रत्यक्षवाद की दर्शन शास्त्र के क्षेत्र में देन नकारात्मक है। क्योंकि उसने तत्व मीमांसा की समस्त उक्तियों को निरर्थक घोषित किया है।

इन्होंने कभी भी इस बात पर ध्यान नहीं दिया कि– दर्शनशास्त्र का नकारात्मक क्रिया के अतिरिक्त सकारात्मक एवं रचनात्मक पहलू भी होता है।

4. तार्किक प्रत्यक्षवाद– सर्वात्मवाद के दोष से ग्रसित है। यद्यपि एयर इस दोष से बचने का असफल प्रयास अवश्य किया था। उनके अनुसार अधिकृत कथनों को ऐसी भाषा में व्यक्त करना चाहिए जिसे आम लोग समझ सके।

किन्तु एयर इस बात को भूल रहे है कि– अधिकृत कथन को प्रतीक कहा जा सकता है। किन्तु समझ सकता है। व्यक्ति का यह अनुभव निजी है और वह अपने को दूसरे व्यक्तियों में संचारित नहीं कर सकता। अतः स्पष्ट है कि व्यक्ति अपने ही अनुभवों को अधिकृत कथनों के माध्यम से व्यक्त करता है। इस दृष्टिकोण से मानव ज्ञान निजी अथवा असार्वनिक है। इन बातों को ध्यान में रखते हुए यह कहा जा सकता है क तार्किक प्रत्ययवाद सर्वात्म के दोष से मुक्त नहीं हो पाया है।

5. तार्कीय प्रत्यक्षवादियों ने ज्ञान के क्षेत्र में ध्वंसात्मक कार्य अधिक किया है। जब रचनात्मक कार्यो की उनके दर्शन में पूर्ण उपेक्षा की गयी है। इन्होंने तत्व मीमांसा का विनाश तो किया ही, लेकिन सबसे बड़ी भयंकर भूल इन्होंने यह किया कि– दर्शनशास्त्र को विज्ञान का तर्क शास्त्र मान लिया, जिससे उन्होंने दर्शनशास्त्र को विज्ञान का दास बना दिया।

6. इन्होंने नीतिशास्त्र और धर्म पर गहरी चोट पहुंचायी। इनका स्पष्ट कथन है कि नैतिक उक्तियां व्यक्ति के अपने संवेग है। मानव जीवन में कोई भी स्थायी नैतिक मूल्य नहीं है। धर्म भ्रामक है ईश्वर एक निरर्थक सत्ता है। इस तरह ईश्वर को पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान पर उसमें पशुत्व को बढ़ावा दिया।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि ता0 प्र0 ने जब दार्शनिकों में चकाचौंध उत्पन्न की थी वे दिन अब समाप्त हो चुके है। अब यह एक नकारात्मक एवं निरर्थक सिद्धांत बनने योग्य बन चुका है।

वियना सर्किल के चिंतक मुख्यतः वैज्ञानिक या गणितज्ञ थे। अतः उनका तत्व शास्त्र विरोधीर होना स्वाभाविक ही था। उनमें मारिल श्लिक के अतिरिक्त कोई भी प्राचीन दर्शन का पर्याप्त ज्ञान नहीं रखता था।

विश्लेषण Analysis

बीसवीं शताब्दी में प्रथम विश्व युद्ध के बाद दर्शन में एक नयी परम्परा देखने को मिलती है। जिसकी कोई रूढ़ परम्परा नहीं थी। इंग्लैंड में दार्शनिकों ने यह अनुभव किया कि विश्लेषण उनका प्रमुख कार्य है। इसका उद्देश्य जटिल दार्शनिका तथ्यों का विश्लेषण कर सरल और बुद्धिगम्य बनाना था। इसका प्रारम्भ तार्कीय अणुवाद से हुआ और शीघ्र ही वह तार्कीय भाववाद की ओर मुड़ गया। दार्शनिक विश्लेषण के ये दोनों चरण महत्वपूर्ण है। जिनका विवरण निम्न हैः–

1– तार्कीय अणुवाद–

तार्कीय अणुवाद की विचारधारा रसेल और विटगेस्टाईन ने शुरू की थी। रसेल ने ब्रैडले के निर्पेक्ष सत का विश्लेषणात्मक ढ़ंग से खंडन किया और ब्रैडले के एकत्व में नानात्व पाया। यह नानात्व अणुओं को था। इसीलिए उसने इसे तार्कीय अणुवाद की संज्ञा दी। दूसरे घोर वस्तुवाद के प्रतिक्रिया के रूप में भी तार्कीय अणुवाद का उदय हुआ था। तार्कीय अणुवाद में तत्व मीमांसा का खंडन नहीं था वरन् उसमें अधिक उच्च तत्व मीमांसा प्रस्तुत की गयी थी। उमर्सन ने तो यहाँ तक कहा है कि अपने मध्यान्हकाल में तार्कीय अणुवाद सर्वाधिक व्यवस्थित तत्व मीमांसा थी।

रसेल का कहना है कि– में अपने सिद्धांत को तार्कीय अणुवाद इसलिए कहता हू क्योंकि विश्लेषण के बाद में जिन अणुओं पर पहुंचता हू वे भौतिक अणु न हेाकर तर्कीय अणु है। तात्पर्य यह है कि– रसेल जिन अणुओं को खोजते है। वे भौतिक विश्लेषण से मिलने वाले अणु है। रसेल तथ्यों Facts का विश्लेषण करके विभिन्न प्रकार के मूल तत्व खोजना चाहता है।

उल्लेखनीय है कि– दार्शनिक चिंतन की प्रक्रियन अस्पष्ट और जटिल वस्तुओं से स्पष्ट निश्चित और सरल वस्तुओं की ओर बढ़ना है। यह कार्य विश्लेषण विधि से ही हो

सकता है। लेकिन ब्रैडले आदि का मत है कि विश्लेषण की प्रक्रिया में विश्लेषण का रूप बदल जाता है। इसलिए इस विधि से वस्तुओं के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान नहीं हो पाता। लेकिन इसके विपरीत रसेल विश्लेषणात्मक विधि ही अपनाता है और इसी विधि द्वारा तथ्यों का विश्लेषण करके विभिन्न प्रकार के मूल तत्व खोजना चाहता है।

रसेल अपने तर्कीय विश्लेषण का प्रारम्भ यह मानकर करता है कि संसार मे तथ्य है। लेकिन वह स्पष्ट रूप से तथ्यों का अर्थ व परिभषा नहीं देता। रसेल ने तथ्यों का वर्गीकरण भी किया है। कुछ तथ्य विशिष्ट होते है और कुछ सामान्य।

विशिष्ट– यह सफेद है, सामान्य सभी मनुष्य मरणशील है दूसरे वर्गीकरण द्वारा कुछ तथ्य निषेधात्मक होते है और कुछ विधेयात्मक।

रसेल की मान्यता है कि तर्क वाक्य श्लिष्ट प्रतीक Complex Symbol होते है। क्योंकि एक वाक्य में कई शब्द होते है, वे सभी शब्द प्रतीक है इसलिए उन शब्दों से बना वाक्य श्लिष्ट प्रतीक होता है। प्रतीक का अर्थ है अपने से इतर किसी पदार्थ का बोध कराना।

रसेल पुनः कहते है कि श्लिष्ट प्रतिज्ञप्तियों का विश्लेषण किया जाय तो अणु प्रतिज्ञप्तियां मिलती है। अणुप्रतिज्ञप्तियों आणविक तथ्य प्रगट करती है। आणविक तथ्यों में विशेष गुण और सम्बंध होते है।

इस प्रकार रसेल ने अपने विश्लेषणात्मक पद्धति द्वारा इस निष्कर्ष पर पहुंचते है कि मूल तत्व तीन प्रकार के है विशेष, गुण और सम्बंध। ये तीनों सरलतम है इनका विश्लेषण नहीं हो सकता। गुण और सम्बंध को एक वर्ग में रखकर सामान्य की संज्ञा दी जा सकती है। इस प्रकार अंतिम रूपसे संसार में केवल दो ही मूल तत्व है। विशेष और सामान्य

मूल्यांकन

रसेल ने तत्वमीमांसा के पुराने विषय पर नये ढ़ंग से विचार किया है और उन्होंने तर्कीय विश्लेषण की चिंतन पद्धति अपनाई है। उन्होंने अपने तर्कीय अणुवाद में तत्व मीमांसा के प्रति रूढ़ दृष्टि कोण को ही अपनाया है। यह बात सत्य है कि इसमें परिकल्पनात्मक तत्व मीमांसा की तिरस्कार किया गया है किन्तु यह नई बात नहीं है। कान्ट ने पहले ही इसका तिरस्कार कर दिया था।

तर्कीय अणुवादी दो प्रकार के असंगत अनुभववादी है। प्रथमतः उन्होंने नैतिकता जैसे क्षेत्र के लिए अपनी सामान्य स्थिति का अर्थ नहीं समझा गया। दूसरे सम्भाव्य प्रतिज्ञप्तियां क्या है इस पर उन्होंने एक सिद्धांत निर्मित किया किन्तु उसमें सिद्धांत को स्वंय छोड़ दिया

गया। इससे यह आवश्यक हो गया कि या तो वे अनुभववाद का पल्ला छोड़ दे या यह स्वीकार करले कि आणविक नैतिक तथ्य भी होते है।

तर्कीय अणुवाद की कमियां रसेल और विटगेस्टाईन जैसे उसके प्रथम चिंतकों को ही खटकने लगी थी। इसलिए विटगेस्टाईन ने तो तर्कीय अणुवाद का परित्याग ही कर दिया और रसेल ने भी अपनी दिशा बदल दी।

(2) तर्कीय भाववाद– या प्रत्यक्षवद (Logical Positivism)

तर्कीय भाववाद का जन्म विपना सर्किल से हुआ। इसकी पृष्ठ भूमि में पश्चिम का प्रत्ययवाद और अनुभववाद था। प्रत्यक्षवाद अपनी चरम परिणति में हेगल वे ब्रैडले के दर्शन में पहुंच गया और अनुभववाद लाक, बर्फले और ह्यूम से होता हुआ मिल तक पहुंच गया था।

इन्ही दोनों विचार धाराओं पर तर्कीय भाववाद की भीत खड़ी है। इसने प्रत्ययवाद का खंडन तथा अनुभववाद को अपना आश्रय बनाया है। लगभग सभी भाववादी ह्यूम के अनुभववाद को अपना आश्रय बनाया। ये सभी ह्यूम द्वारा की गयी तत्व शास्त्र को आलोचना को भी बिना किसी तर्क के सत्य मान लेते है। ये सभी ह्यूम द्वारा की गयी तत्व शास्त्र को आलोचना को भी बिना किसी तर्क के सत्य मान लेते है। ये सभी ह्यूम की तरह परम्परावादी तत्व मीमांसा का खंडन किया।

तर्कीय भाववाद के दो पक्ष है निषेधात्मक और विधेयात्मक– विधेयात्मक पक्ष के तहत उसकी दार्शनिक चिंतन पद्धति व भाषा विश्लेषण आता है। निषेधात्मक पक्ष में परम्परावादी तत्व शास्त्र का खंडन आता है।

प्रथम पक्ष ने उन्होंने विज्ञान को सुदृढ़ आधार प्रदान करने का अथक प्रयास किया है और तत्व मीमांसा की निरर्थकता को सिद्ध भी किया है।

विश्लेषक दार्शनिकों के समक्ष यह प्रश्न था कि यदि दर्शन का कार्य अतिभौतिक तथ्यों पर विचार करना नहीं है और तत्व शास्त्र सम्बंधी सभी प्रतिज्ञप्तियां निरर्थक है तो दर्शन को कार्यक्षेत्र ही क्या रह गया है। इस प्रकार दर्शन के हाथ से भौतिक और अतिभौतिक दोनों क्षेत्र निकल गये।

अतः विश्लेषक दार्शनिकों ने यह निश्चय किया कि दर्शन का कार्य वैज्ञानिकों द्वारा दिये गये प्रकथनों का विश्लेषण करना, उनके प्रकारों और सम्बंधो का अध्ययन करना और उनके संघटक पदों का अर्थ निर्धारित करना है। इन दार्शनिकों ने नया तर्क शास्त्र प्रस्तुत किया और उसके द्वारा इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि विज्ञान एक है। विभिनन विधियों को अपनाने वाले अनेक विज्ञान नहीं है और न ज्ञान के अनेक साधन ही है। ज्ञान मूल रूप से

एक प्रकार का है। वह एकीकृत विज्ञान United Science के अंतर्गत आता है। जिस तर्कशास्त्र से विश्लेषक दार्शनिकों ने विज्ञान की समस्याओं को अध्ययन किया उसे कार्नप विज्ञान का तर्कशास्त्र Logic of Science कहा है।

विज्ञान के इस तर्क शास्त्र को उपकरण बना कर भाववादियों ने विज्ञान को नये अर्थ में समझने का प्रयत्न किया। उन्होंने विज्ञान की विभिन्न समस्याओं पर विचार किया। सम्भावना अगमन प्रकृति के नियम आदि विज्ञान की ऐसी ही कुछ समस्यायें है जिन पर विचार करना भाववादियों ने आवश्यक समझा। परम्परागत तर्क शास्त्र में सामान्य प्रतिज्ञप्ति निकालने और उन्हें सिद्ध करने के लिए आगमन विधि अपनाई जाती है। लेकिन भाषावादियों ने उसकी त्रुटियों को देखते हुए तर्क शास्त्र से ही आगमन विधि को निकाल दिया। उन्होंने बताया कि सामान्य कथन एक मनोवैज्ञानिक क्रिया है, उसमें तर्कशास्त्र का प्रयोग अपेक्षित है। हम अपने पूर्व अनुभवों को एकत्र कर सामान्य प्रतिज्ञप्ति के रूप में प्रस्तुत कर देते है।

(1) लुडविग विटगेस्टाईन

विटगेस्टाईन एक अति प्रतिभाशाली दार्शनिक था। उसका नाम किसी एक दार्शनिक पद्धति से सम्बंध होकर अणुवाद तार्कीय भाववाद(प्रत्यक्षवाद) कैम्ब्रिज दर्शन चिकित्सात्मक भाववाद तथा विश्लेषणात्मक दर्शन में सर्वत्र लिया जाता है।

विटगेस्टाईन की उपेक्षा करके अब कोई भी दार्शनिक नवीन चिंतन पद्धति में प्रवेश करना उचित न समझेगा। यह सत्य है कि उसके साहित्य का अध्ययन करना सरल कार्य नहीं है। सम्भवतः यहीं कारण है कि उसके सम्बंध में कुछ क्षतियां भी प्रचलित हो गयी है। जिस प्रकार इसाई लोग कम्युनिस्ट साहित्य नहीं पढ़ना चाहते वैसे ही तत्वशस्त्री उसकी दार्शनिक विश्लेषण विधि से दूर भागता है।

आप को किसी भी दर्शन पद्धति से मोह नहीं है। जैसे प्राचीन तत्व शास्त्र का खंडन करते है वैसे ही अवाचीन दार्शनिक पद्धतियों का। वे दर्शन में अपना कोई भी मत नहीं मानते थे। उनकी दृष्टि में दर्शन का मुख्य कार्य दार्शनिक विधि से चिंतन करना है इस लिए उन्होंने दार्शनिक प्रविधि पर अधिक बल दिया है।

आप के विचारों का केन्द्र बिन्दु यही है कि दार्शनिक प्रविधि का महत्व दार्शनिक प्रणाली से अधिक है। अपने प्रसिद्ध ग्रंथ (Tractatus logico Philosophicus) में उसने यहाँ तक कहा है कि दर्शन को व्यक्त करना ही असम्भव है। दर्शन मात्र वैज्ञानिक प्रतिज्ञप्तियों के स्पष्टीकरण की प्रक्रिया है। प्रतिज्ञप्तियों का निर्माण करना दर्शन का कार्य न ही विज्ञान का कार्य है। दर्शन का कार्य मात्र विज्ञान द्वारा निर्मित प्रतिज्ञप्तियों का स्पष्टीकरण करना है। दर्शन का कार्य विचारों को स्पष्ट करना और उनकी सीमा निर्धारित करना है। Tractus के अंत आपने लिखा है कि– "जो कुछ कहा जा सके उसके अतिरिक्त कुछ भी कहा जाय।" दर्शन के सम्बंध में विटगेस्टाईन ने यह विचार अंतिम नहीं समझना चाहिए। अपने ग्रंथ

अपने विचार बदल दिये। आपने Tractatus में जहाँ दार्शनिक वाक्यों को असम्भव और निरर्थक कह कर छोड़ दिया था। वहाँ उसने Investigation में उन्हीं दार्शनिक वाक्यों के विश्लेषण को महत्व प्रदान किया। उनके मतानुसार–दार्शनिक चिंतन का अब अभिप्राय यहीं है कि– "समस्या को समस्या समझना चाहिए।" क्योंकि जब हम समस्या की उलझन को समझेंगे तभी उससे बाहर निकलने का प्रयत्न भी करेंगे।

विटगेस्टाईन प्रश्न करते है कि– दर्शन में आप का क्या उद्देश्य रहता है? इसका वह स्वंय उत्तर देता है कि– "किसी मख्खी को बोतल के बाहर निकलने का मार्ग दिखना।" एक अन्य स्थान पर उसने यह भी लिखा है कि–"दार्शनिक किसी प्रश्न के साथ वही व्यवहार करता है जो किसी बिमारी के साथ उपचार करने के लिए किया जाता है।"

यदि काई व्यक्ति दर्शन की समस्याओं को समस्या ही नहीं अनुभव करता तो वह दर्शन समझ भी नहीं सकता।

1. चित्र सिद्धांत– Picture Theory- Tractatus में विटगेस्टाईन ने अपने चित्र सिद्धांत का उल्लेख किया है। प्रतिज्ञप्तिय चिन्ह एक प्रकार के चित्र है। किन्तु केवल प्रतिज्ञप्तीय चिन्हों को एक ही चित्र नहीं समझना चाहिए। इन्द्रियों की परिधि से बाहर की चीजें भी चित्र हो सकती है जैसे विचार भी चित्र है।

चित्र किसी तथ्य का चित्रण करते है चित्र स्वंय भी एक तथ्य है। विचार मानस तथ्यों से निर्मित मानसिक चित्र है। चित्र भी वैसे ही तथ्य है जैसे तथ्यों को वे चिंतित करते है। क्योंकि चित्रो में कुछठ तत्व विशेष प्रकार से संगठित होते है। जिस विशेष प्रकार से इसके तत्व संगठित होते है उसे चित्र की संरचना (Picture Structing) कहते है और इसकी संरचना की सम्भावना इसका आकार है। चित्रित तथ्यों को विटगेस्टाईन चित्राकार (Pictorical Parm) कहता है। चित्र और तथ्य में समरूपता होती है। तभी तो चित्र किसी तथ्य का चित्रण कर पाता है। आप की मान्यता है कि चित्र और तथ्य के बीच कुछ न कुछ समरूपता होती है वहीं चित्राकार है।

विटगेस्टाईन के चित्राकार की तुलना प्रतिनिधि आकार और तर्कीय आकार से की जाती है। चित्राकार और प्रतिनिधि आकार में स्पष्ट भेद है। चित्र अपनी वस्तु का प्रतिनिधित्व उसके बाहरी ओर से करता है और इसका प्रतिनिधि आकार ही उसका दृष्टिकोण होता है।

किसी चित्र में कोई न कोई दृष्टिकोण अपनाया जाता है। एक ही स्थिति के भिन्न–भिन्न दृष्टिकोणों से भिन्न–भिन्न चित्र हो सकते है। दृष्टिकोण स्वच्छंद हेाता है किन्तु चित्राकार स्वच्छंद नहीं होता। यहीं चित्राकार और प्रतिनिधि आकार में अंतर है।

विटगेस्टाईन अपने चित्र सिद्धांत प्रतिपादन पेरिस के न्यायालय में एक मोटर कार की दुर्घटना कार का खिलौना बनाकर कर चित्रत की गयी थी, से किया था। वैसे आप को इस सिद्धांत की प्रेरणा जर्ष से भी मिली है।

(2) भाषा– भाषा क्रीड़ा Language Game

विटगेस्टाईन के अनुसार सम्पूर्ण दर्शन भाषा की विवेचना है। नित्य प्रति की भाषा मानव अंग (Flum on orga) का एक भाग है और उसी की तरह जटिल भी है। भाषा जीवन का एक रूप है। मनुष्य के क्रिया व्यापार का वह एक तरीका है। भाषा में भावा छिपे रहते है जैसे वस्त्रों में शरीर के अंग छिपे रहते है। भाषा अनुभूत तथ्यों की प्रतीकात्मक प्रतिनिधि है।

विटगेस्टाईन ने कहा है कि– भाषा शब्दों का एक प्रकार का खेल है जेा कई प्रकार से खेला जा सकता है। भाषा क्रीड़ा कई प्रकार की होती है। उदाहरणार्थ– व्यंग की भाषा, संगीत की भाषा, प्रार्थना करने की भाषा आदि। इनका प्रयोग भी भिन्न–भिन्न होता है। विटगेस्टाईन ने यह स्वीकार किया है कि भाषा में केवल तथ्य ही व्यक्त नहीं किये जाते बल्कि प्रश्न किये जाते है आर्शीवाद दिया जाता है, प्रार्थना की जाती है विचार किया जाता है आदि। अतः स्पष्ट है कि भाषा के कार्य अनेक प्रकार के होते है।

भाषा की संरचना बहुत जटिल होती है। इसके अनेक पहलु है। किसी भी भाषा में अनगिनत प्रकार के प्रतीकों शब्दों और वाक्यों को प्रयोग में लाया जाता है। किन्तु इस भाषा के अंदर सारे अंशो की स्थायी नहीं कहा जा सकता। इन्हीं अंशो के सहयोग से नयी भाषा अथवा भाषा क्रीड़ा की उत्पत्ति हो सकती है। समय बीवने पर कुछ भाषा क्रीड़ाए विस्मृति के कारण लुप्त भी हो जाती है।

भाषा क्रीड़ा का मूल अर्थ यह है कि कथित भाषा मानव जीवन का एक मुख्य अंग है उदाहरण के लिए वस्तुओं का नामकरण भाषा क्रीड़ा का एक मुख्य पहलू है। भाषा के प्रयोग के साथ जब कार्यो में सम्पर्क स्थापित होता है, तो उसी को भाषा क्रीड़ा कहा जाता है।

विभिनन प्रकार की भाषा क्रीड़ाओं में चित्रों को प्रयोग में लाया जाता है। भाषा में इन चित्रों के प्रयोग द्वारा कोई भी व्यक्ति अपने समाज के लोगों के साथ बर्ताव करता है। प्रत्तेक क्रीड़ा कुछ नियमों के अनुसार की जाती हे। इसी तरह से भाषा क्रीड़ा भी कुछ नियमों के अनुसार की जाती है। यद्यपि भाषा पूर्ण रूप से खेल नहीं है। किन्तु इसकी खेल से कुछ समरूपता है। किसी भाषा में प्रत्तेक शब्द नियमें का पालन उस तरह नहीं करता जिस तरह किसी खेल में प्रत्तेक कार्य खेल के नियमों का पालन करता है।

यद्यपि विटगेस्टाईन ने किसी दार्शनिक पद्धति की उद्भावना नहीं की फिर भी उसके अनेक प्रशंसक और अनुयायी हुए। कारण यह है कि उसकी सूक्ष्म दृष्टि और विश्लेषक प्रतिभा सत्य की खोज में सतत प्रयत्शील दिखाई देती है। Investigation में उसने दर्शन का उद्देश्य नवीन उदभावनायें करना नहीं बल्कि मानसिक उलझने दूर करना है। दार्शनिक समस्यायें प्रायः अर्थहीन पदों का प्रयोग करने या शब्दों का अनुचित प्रसंग में नियोजित करने के कारण उत्पन्न होती है। यदि दर्शन में शब्दों का प्रयोग उसी अर्थ में किया जाये जिस अर्थ में दैनिक जीवन में प्रयोग किया जाता है तो अनेक समस्यायें हल हो सकती है। इसलिए आपने सुझाया है कि–दर्शन के शब्द खींचकर नित्य प्रति के प्रयोग में ले आना चाहिए।

A.J. एयर– सत्यापन या प्रमाणीकरण

प्रमाणीकरण के सिद्धांत द्वारा प्रलयन की सार्थकता जांची जाती है। किसी व्यक्ति के लिए एक वाक्य की ताथ्यिक सार्थकता तभी समझी जाती है जब वह यह है कि वह उस वाक्य को कैसे प्रमाणित कर सकता है। दूसरे शब्दों में किन्हीं परिस्थितियों में कौन से प्रत्यक्षीकरण उस वाक्य को सत्य मान कर स्वीकार करते है या असत्य जानकर तिरस्कृत करते है।

इसके विपरीत यदि उस वाक्य को प्रत्यक्षीकरण से प्रमाणित नहीं किया जा सकता तो वह मिथ्या तर्क वाक्य–"Psewdo Proposition" ही होगा।

इस सिद्धांत की विस्तृत विवेचना के लिए एयर ने प्रमाणीकरण को व्यवहारिक और सैद्धांतिक दो भागों में विभाजित कर देता है। आप का विचार है कि अधिकांश प्रतिज्ञप्तियां ऐसी होती है जिन्हें हम यदि कष्ट उठाना चाहे तेा प्रमाणिक कर सकते है। फिर एसी प्रतिज्ञप्तियां है जिनको प्रमाणित करने के लिए हमारे पास साधन नहीं होते है। उदाहरणार्थ– चन्द्रमा के दूसरी ओर पर्वत्र है। इसी प्रकार की प्रतिज्ञप्ति है। एयर कहता है अभी तक ऐसा कोई एक्ट नहीं बना है जिससे चन्द्रमा के दूसरी ओर पहुंच कर देखा जा सके कि वहाँ पर्वत है कि नहीं। इसलिए वास्तविक प्रत्यक्षीकरण के द्वारा वाक्य की सार्थकता सिद्ध नहीं की जा सकती। किन्तु इतना हम जानते है यह वाक्य प्रत्यक्षीकरण के द्वारा प्रमाणित हो सकता है यदि हमारे पास उनके उपयुक्त साधन हो। इसलिए यह वाक्य सिद्धांत प्रमाणित हो सकता है लेकिन व्यवहारत नहीं।

कुछ ऐसे वाक्य होते है जो दो मे से किसी प्रकार भी प्रमाणित नहीं हो सकते। उदाहरणार्थ निर्पेक्ष में स्वंय विकास और प्रगति नहीं होती किन्तु विकास और प्रगति में वह वर्तमान रहता है। यह वाक्य सिद्धांत में भी प्रमाणित नहीं हो सकता।

एयर ने प्रमाणीकरण को पुनः सबल और निर्बल दो भागों में बाटा है। किसी प्रतिज्ञप्ति को तभी सबल प्रमाण योग्य माना जाता है जब उसकी सत्यता अनुभव द्वारा निर्णीत की जा सके। किन्तु यदि किसी वाक्य को अनुभव द्वारा प्रमाणित करना सम्भव न हो तो उसे निर्बल प्रमाण योग्य कहा जायेगा।

यदि सार्थकता का मापदंड निर्णीत प्रमाणिकता (Conclusive Veritiability) मानी जाती है तो बड़ी कठिनाई उपस्थित होगी। उदाहरणार्थ– सामान्य प्रतिज्ञप्तियां तो प्रमाणित की ही नहीं जा सकती है। आर्सनिक जहरीला है। सब मनुष्य मरणधर्मा है। गर्म करने पर वस्तु बढ़ती है। यदि प्रज्ञप्तियों की प्रमाणिकता कितने ही प्रक्षणों के बाद भी निर्धारित नहीं की जा सकती। यदि उन प्रतिज्ञप्तियों को अनंत प्रत्यक्षीकरण की आवश्यकता नहीं मानी जा सकती है। सार्थकता का मापदंड निर्णीत प्रमाणिकता होने पर तत्व मीमांसा के प्रकथनों की भांति सामान्य प्रतिज्ञप्ति भी अर्थहीन मानने पड़ेगी।

कुछ प्रत्यक्षवादी (भाववादी) दार्शनिकों ने (श्लिक) साहस के साथ यह मान भी लिया कि सामान्य प्रतिज्ञप्तियां अर्थहीन है किन्तु उन्होंने इसे महत्वपूर्ण प्रकार की अर्थहीनता माना। एयर का विचार है कि– महत्वपूर्ण कहकर स्थिति बचाई नहीं जा सकती है। समस्या प्रतिाप्तियों तक सीमित नहीं है। भूत काल की प्रतिज्ञप्तियों की भी यही हाल है। ऐतिहासिक तथ्यों के कितने भी सबल प्रमाण क्यों न हेा किन्तु उन्हें केवल सम्भाव्य ही कहा जा सकता है।

अतः एयर इस निर्णय पर पहुंचता है कि पुनरूक्ति (Tautology) के अतिरिक्त अन्य सभी प्रतिज्ञप्तियां सम्भाव्य परिकल्पना Probable Hypothosis से अधिक कुछ नहीं है।

तत्व मीमांसा–

प्रमाणीकरण के सिद्धांत से यदि तत्व मीमांसा की सार्थकता जांची जाय तो एयर के मतानुसार उसके वाक्य अर्थहीन मिलते है। एयर का यह मुख्य निर्णय या सिद्धांत है कि– तत्व मीमांसा के सभी कथन अर्थहीन है। उदाहरण के लिए संसार में कितने तत्व है इस प्रश्न को लेकर एकत्ववादियों एवं बहुत्ववादियों में मतभेद है। एयर के अनुसार इस मतभेद को दूर करने के लिए कोई ऐसी स्थिति नहीं दिखाई देती जिसे इसके हल के लिए सार्थक समझा जा सके। किन्तु यदि यह कहा जाता हे कि कोई भी सम्भव प्रत्यक्षीकरण इस बात की सम्भावना नहीं रखता कि सत्य एक तत्व है या बहुत है तो हमारा निर्णय होगा कि दोनों में से कोई भी कथन सार्थक नहीं है।

एयर दर्शन और तत्व मीमांसा में भेद करता है और कहता है कि प्राचीन महान दार्शनिक प्रायः तत्वमीमांसक नहीं थे। तत्व मीमांसा की प्रतिज्ञप्तियां अर्थहीन है। इसका अर्थ यह नहीं है कि उनके घटक तथ्य पूर्ण नहीं है। वे वस्तुतः न पुररूक्ति होते है और न

अनुभवगत परिकल्पना। पुनरूक्ति और अनुभवगत परिकल्पना न होने के कारण वे सार्थक प्रतिज्ञप्तियां भी नहीं है। इसलि एयर यह निर्णय निकालता है कि तत्व मीमांसा के सभी कथन अर्थहीन है।

एयर का कथन है कि अनुभव मे न आने वाले अस्तित्व का कोई प्रमाणी करण सम्भव नहीं है। इसलिए वह अर्थहीन है। अनुभवव जगत में जिस वस्तु को स्थान नहीं मिलता, उसके लिए अनुभवातीत संसार की रचना कर ली जाती है।

Misplaced एयर के विचार से तत्व मीमांसकों को विस्थापित कवि समझना चाहिए।

एयर– तत्व मीमांसा, आचार शास्त्र ईश्वर व आत्मा के सम्बंध में एयर के एक जैसे ही विचार है। एयर का अनुभव इन्द्रिय जन्य अनुभव तक ही सीमित होने के कारण ईश्वर के सम्बंध में कोई भी प्रकथन या प्रतिज्ञप्ति अनुभव से प्रमाणित नहीं हो सकती। संक्षेपतः ईश्वर आत्मा व आचार सम्बंधी सभी प्रकथन तत्व मीमांसा के क्षेत्र से सम्बंधित है और वे सम अर्थहीन है।

एयर ने स्पष्ट कहा है कि मेरे विचार से ईश्वर के सम्बंध में कहे गये सभी प्रकथन अर्थहीन है। आस्तिकों का कहना है कि ईश्वर है और नास्तिकों का कहना है कि ईश्वर नहीं है। एयर के विचार से दोनों प्रकथन समान रूप से अर्थहीन है।

1. इसका अर्थ नहीं है कि एयर संदेहवादी है। एयर का कहना है कि ईश्वर के सम्बंध में कोई सार्थक प्रतिज्ञप्ति ही नहीं बनती।
2. एयर ने यह स्वीकार किया है कि उसके आत्मा सम्बंधी निर्णय ह्यूम जैसे ही है। ह्यूम को कोई आत्म तत्व स्वीकार नहीं था। वह किसी आत्मा का अनुभव ही नहीं कर पाया था।

एयर का विचार है कि यदि आत्मा तत्व मीमांसा का विषय है और हमारे अनुभव से परे है तब तो उसके सम्बंध में कोई भी प्रतिज्ञप्तियां अर्थ पूर्ण हो ही नहीं सकती।

मूल्यांकन– एयर की गणना उल्लेखनीय तर्कीय प्रत्यक्षवादियों में की जाती है। एयर के चिंतन का आधार प्रमाणीकरण का सिद्धांत है। वह इस सिद्धांत को मानता तो है किन्तु उसके मानने का कारण नहीं बताता। सिद्धांत का वर्णन ऐसे किया गया है मानो वह स्वंय सिद्ध हो। इसके अतिरिक्त इसमें अनवस्था दोष भी दिखाई देता है।

1. प्रमाणीकरण सिद्धांत के अनुसार– किसी वस्तु के सम्बंध में अनुभविक प्रतिज्ञप्ति की सार्थकता उसके प्रमाणीकरण में नीहित है। वह प्रतिज्ञप्ति प्रमाणित तभी हो सकती है जब वह वस्तुतः या सम्भवतः इन्द्रिय घटकों में आ सके। इसी प्रकार पुनः इन्द्रिय

घटकों को व्यक्त करने वाले प्रकथन के लिए पुनः इन्द्रिय घटकों में आ सकने वाले तथ्य को व्यक्त करने वाली प्रतिज्ञप्ति रचना पड़ेगी। अतः प्रमाणीकरण का यह क्रम कभी समाप्त न होगा और अंतिम प्रकथन निर्मित न किया जा सकेगा। इस प्रकार यह अनवस्था दोष से ग्रसित है।

2. यद्यपि एयर निष्पक्ष भाव से परम्परागत दर्शन शाखाओं की आलोचना करने का प्रयत्न करता है किन्तु वस्तुतः वह भौतिकवादी की ओर झुका रहता है। कारण यह है कि उसकी दृष्टि में वसभी मानसिक अनुभव शारीरिक प्रक्रियाओं के परिणाम है अर्थात उस पर वाटसन के व्यवहारवादी मनोविज्ञान का प्रभाव है।
3. एयर तत्व शास्त्र को न मानने के कारण आत्मा को भी नहीं मानता। वह कहता हे कि आत्मा का इन्द्रिय अनुभव नहीं होता और वह दिखाई नहीं देती। अतः उसका अस्तित्व नहीं माना जा सकता। एयर के इस कथन को स्वीकार नहीं किया जा सकता। क्योंकि आत्मा का खंडन करने वाला आत्मा स्वरूप होता है। प्रत्तेक व्यक्ति को अपनी आत्मा का अनुभवन सदैव होता रहता है।

नोटः– तत्म मीमांसा का प्रत्याख्यान करने वाला तर्कीय भाववादियों का सिद्धांत एवं एक विशेष प्रकार का तत्ममीमांसक है। वह परम्परागत तत्व मीमांसा का खंडन अवश्य करता है किन्तु स्वंय भी हरवेश में तत्व मीमांसा ही है। प्रमाणीकरण का सिद्धांत तत्व मीमांसा नहीं तो और क्या है। –विचारणीय

मानसिक विचार ही चित्र है– भाषा विचार भी चित्र को व्यक्त करते

———————————

अस्तित्ववाद–

अस्तित्ववाद एक दार्शनिक सिद्धांत है जिसमें मानव अस्तित्व का महत्व तथा उसकी स्वतंत्रता पर बल दिया जाता है। इस सिद्धांत में यह बताया गया हे कि मानव अपने ही प्रयत्न से अपने ही व्यक्तित्व को पूर्ण रूप से बनाता है। इस सिद्धांत को व्यवहारिक दर्शन (Practical Philosophy) भी कहा जाता है। क्योंकि अस्तित्ववाद में मानव–जीवन की व्यावहारिक समस्याओं पर बहुत अधिक महत्व दिया जाता है।

यह दर्शन हेगेल और उनके अनुयायियों के दर्शन के विरोध में एक प्रतिक्रिया है। समकालीन अनेक दार्शनिकों की तरह अस्तित्व भी कोरे बुद्धिमान का विरोधी है। यह उन सभी दर्शनों का कटु आलोचक है। जो मनुष्य के अस्तित्व को महत्व न देकर विश्व तथा उसकी समस्याओं को विचार का केन्द्र समझते है। यह प्रत्ययवाद प्रकृतिवाद तथा जड़वाद का घोर विरोधी है। क्योंकि इनमें मनुष्य की सत्ता की सर्वेसर्वा न मानकर गौण स्थान दिया गया है।

1. अस्तित्ववाद में प्रत्ययवादी दार्शनिक सिद्धांतो की बड़ी आलोचना की गयी है। प्रत्ययवाद में सार अथवा आध्यात्मिक तत्व को महत्व दिया गया है और यह कल्पना की गयी है कि–मानव व्यक्तित्व के अस्तित्व के पहले से ही आध्यात्मिकतत्व का अस्तित्व है। हेगल, ब्रैडले आदि का ऐसा ही विचार है।
2. लेकिन अस्तित्ववादियों के अनुसार मानव अस्तित्व सार के अस्तित्व की पूर्वावस्था है। प्रत्ययवाद में मानव व्यक्तित्व के स्वरूप को ब्रहम के स्वरूप पर निर्भर बताया जाता है। अस्तित्ववादियों का कहना है कि मानव व्यक्तित्व की स्वतंत्रता यदि ब्रहम की स्वतंत्रता पर निर्भर करती हो तो वह वास्तविक स्वतंत्रता नहीं है। केवल भ्रम मात्र है।
3. अस्तित्ववादियों ने प्रकृतिवाद की भी आलोचना की है। प्रकृतिवादी चिंतक प्रकृति को ही सबकुछ मान बैठते है, उनकी दृष्टि में मनुष्य प्रकृति रूपी ब्रहत यंत्र का एक पुर्जा मात्र है। ये लोग मनुष्य की स्वतंत्रता सत्ता मानने को प्रस्तुत नहीं है।
4. अस्तित्ववादियों ने वैज्ञानिक दर्शन की भी कड़ी आलोचना की है। क्योंकि वैज्ञानिक दर्शन में विज्ञान का अनुसरण किया जाता है। जबकि अस्तित्ववादियों ने दर्शन शास्त्र को विज्ञान के प्रभाव से बचाने का प्रयत्न किया है। विज्ञान में मानव मूल्यों को कोई महत्व नहीं दिया जाता, किन्तु अस्तित्ववादियों के अनुसार मानव मूल्य प्राथमिक एवं आधार भूत है। विज्ञान इन मूल्यों के अधीन है। अतः दर्शनशास्त्र को विज्ञान से प्रेरणा न लेकर मूल्य शास्त्र से प्रेरणा लेना चाहिए।

अस्तित्ववादी चिंतक मनुष्य की गूढ़ बातों को समझने के लिए तर्क तथा भाषा विश्वेषण पर भरोसा नहीं करते। उनके मतानूसार तर्क सत्ता की गहराई छू पाने में असमर्थ

है। यही कारण है कि अस्तित्ववाद को अबुद्धिवाद का दर्शन (Philosophy of irrationalism) कहा जाता है। अबुद्धिवाद से यह न समझ लेना चाहिए कि मनुष्य को ज्ञान प्राप्त करने के लिए बुद्धि की आवश्यकता ही नहीं है। इसका तात्पर्य केवल यही है कि तर्क के सहारे मनुष्य की गूढ़ सत्ता से सम्बंधित सभी समस्यायें नहीं समझी जा सकती है। इसलिए प्रो0 थीली ने इसे विश्वास का दर्शन कहा है।

मानव व्यक्तित्व की स्वतंत्रता ही उसका ऐश्वर्य है। वह अपने कार्यो के लिए उत्तर दायी है क्योंकि वह स्वतंत्र है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि अस्तित्ववाद में मानव व्यक्तित्व और उसकी परिस्थितियों के विषय में विवेचना की जाती है। किर्केगार्ठ, हेडेगर, सार्क, पेस्पर्स और मार्सेल अस्तित्व के मुख्य विचारक है। जिसमें सार्ग सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। ये अस्तित्ववाद के स्थापन में सबसे अधिक जागरूक है।

इन विचारकों के दर्शन में जो समानतायें देखने में आती है। वे मुख्य रूप से दार्शनिक चिंतन विधि और चिंतनीय समस्याओं की है। यह कहा जा सकता है कि अस्तित्ववाद कुछ विशेष समस्याओं पर स्थूल रूप से विचार करने की एक विधि है जिसमें विशेष ध्यान व्यक्ति की सत्ता और स्वतंत्रता पर दिया जाता है। मनुष्य अपने अस्तित्व पर पर्दा डालकर संसार के समग्र रूप को कितना ही सुंदर रूप देने का प्रयत्न करे– व्यवहार में वह कभी सफल नहीं हो सकता। उसके चिंतन का आधार खोखला एवं काल्पनिक होगा। दार्शनिक चिंतन का सबसे सुरक्षित मार्ग अपने अस्तित्व के आधार पर हो सकता है। इसीलिए– सार्क ने कहा है कि अस्तित्ववाद का मुख्य सिद्धांत यही है कि– सार से पहले अस्तित्व है और यही सब अस्तित्ववादी दार्शनिकों का समर्पित मता है। इनका कहना है कि जब तक किसी वस्तु का अस्तित्व नहीं होता वही किसी भी वर्ग में नहीं रखी जा सकती और न उसमें किसी गुण के होने की सम्भावना रहती है। यदि कोई वस्तु होगी तो उसका अस्तित्व अनिवार्य रूप से होगा। उस वस्तु के होने में ही अस्तित्व सन्निहित है। अतः यह सिद्ध होता है कि पहले कोई वस्तु का अस्तित्व होगा और बाद में उसका सार। उदाहरणार्थ– मन में ईश्वर के प्रत्यय के सार के होने के पूर्व व्यक्ति का अस्तित्व आवश्यक होगा। तभी मन में सार प्रत्यय रूप में विद्यमान रह सकता है। अतः सार से पहले अस्तित्व का रहना स्वाभाविक है।

सार्क यह कहता है कि 'सार' का निर्धारण मानव रूचि और चयन से होता है और उसकी वस्तु परक सत्ता नहीं होती है। इससे भी सिद्ध होता है कि सार के पूर्व अस्तित्व होता है। क्योंकि सार का निर्धारण तभी हो सकता है जब मानव का अस्तित्व दूसरे पूर्व हो।

मार्सेल की भी मान्यता है कि– अस्तित्व प्रत्यक्ष रूप से पहले अनुभव किया जाता है और सार उसके उपरान्त खोजा जाता है। इसलिए हमें दार्शनिक चिंतन का प्रारम्भ अस्तित्व से करना चाहिए।

अस्तित्ववाद के प्रकार– सभी अस्तित्ववादी दार्शनिकों का अध्ययन करने उनको हम दो भागों में विभाजित कर सकते है। उनमें से कुछ ईश्वरवादी और कुछ अनीश्वरवादी है।

1. ईश्वर में आस्था रखने वाले अस्तित्ववादियों में किर्केगार्ड, जेस्पर्स और मार्सेल के नाम है। इन लोगों की धारणा है कि ईश्वर की सत्ता अवश्य मेव है। ये आत्म–स्वातंत्रय की अनुभूति की ओर बढ़ते हुए अपने अंदर ईश्वरीय सत्ता का अनुभव करते है। मनुष्य सामान्य रूप से अपने की और लोगों से पृथक अनुभव करता है।
2. ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास न करने वाले अस्तित्ववादी नीत्से, हैडेगर और सार्क है। नीत्से तो साफ कहता है कि– ईश्वर मर गया है Good is Dead। इन चिंतकों का कहना है कि– ईश्वर की सत्ता में विश्वास करना यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, किन्नर आदि अप्राकृतिक जीवों की सत्ता में विश्वास करने जैसा ही है।

यदि ईश्वर का ही अस्तित्व नहीं है तो उसके बनाये गये नियमों का क्या मूल्य हो सकता है। इसीलिए निरीश्वरवादी अस्तित्ववादी मनुष्य को पूर्णतः स्वतंत्र समझते है। नैतिक आचरण का उत्तरदायित्व मनुष्य पर ही है। ईश्वर रहित विश्व में मनुष्य को स्वंय नैतिक मूल्यों का चयन और उन्नयन करना पड़ता है। उसका पथ प्रदर्शन के लिए न ईश्वर है और न कोई सार्वभौमिक नैतिक नियम।

———————————————————

अनुभववाद

अनुभववाद पहले ज्ञानमीमांसा की विवेचना करना आवश्यक समझता है। जबकि बुद्धिवाद– तत्वमीमांसा की विवेचना सर्वप्रथम करता है।

वह सिद्धांत जिसमें अनुभव को ही ज्ञान का एक मात्र स्त्रोत या आधार माना जाता है इन्द्रियानुभववाद कहलाता है।

अनुभववाद व बुद्धिवाद में अंतर

1. इन्द्रियानुभाव के अनुसार वास्तविक ज्ञान की उत्पत्ति केवल अनुभव से हो सकती है तर्कबुद्धि से नहीं। किन्तु तर्क बुद्धि के अनुसार वास्तविक ज्ञान की प्राप्ति केवल तर्कबुद्धि से हो सकती है। इन्द्रियों से नहीं।
2. अनुभववाद की मान्यता है कि हमारा मन अपनी आरम्भिक अवस्था एक अंधेरे कमरे तथा कोरे कागज की भांति साफ होता है और अनुभव के पूर्ण उसमें किसी भी प्रकार के प्रत्यय उत्पन्न नहीं होते। अतः सभी ज्ञान अर्जित है।

   बुद्धिवाद के अनुसार हमारे मन में कुछ सहज प्रत्यय (Innate Idea) होते है जो हमारे ज्ञान के आधार है।
3. अनुभववाद यह मानता है कि अनुभव से ही प्रत्ययों की प्राप्ति होती है और उन्हीं के सम्बंध से ज्ञान की उपलब्धि होती है। अतः अपने आपमें तर्क बुद्धि निष्क्रिय रहती है। बाद में अनुभव से उपदान मिलने पर भले ही कुछ सक्रिय हो जाती है।

   बुद्धिवाद के अनुसार तर्कबुद्धि अपने अंदर से ही ज्ञान उत्पन्न करती है। अतः यह स्वभावुक क्रियाशील है।
4. इन्द्रियानुभववादी प्रणाली मुख्यतयः आगमनात्मक है। क्योंकि इसके अनुसार हमें विशेष वस्तुओं का ही इन्द्रियानुभव होता है और बाद में इसके आधार पर हम आगमन प्रणाली के द्वारा सामन्य ज्ञान प्राप्त करते है।

   लेकिन तर्क बुद्धिवाद की प्रणाली मुख्यतः गणित की प्रणाली की भांति निगमनात्मक है। हम सहज प्रत्ययों के आधार पर निगमन प्रणाली के द्वारा ज्ञान की प्राप्ति करते है।
5. इन्द्रियानुभववाद के आदर्श वस्तुनिष्ठ विज्ञान है क्योंकि उसके अनुसार वस्तुनिष्ठ विज्ञान ही वास्तविक ज्ञान प्रदान करते है।

   तर्कबुद्धि गणित को अपना आदर्श मानता है।
6. इन्द्रियानुभववाद का कहना है कि वस्तुनिष्ठ विज्ञानों द्वारा ज्ञान सैद्धांतिक न होकर व्यवहारिक होता है। अतः उसके लिए सर्वव्यापी तथा अनिवार्य होना आवश्यक नहीं है। वे प्रार्थिक अथवा प्रसंभाव्य (Probabale) होते है। इस प्रकार इन्द्रियानुभववाद का अभिष्ठ वस्तुनिष्ठ विज्ञानों की भांति प्रसंभाव्य ज्ञान की प्राप्ति है।

   तर्कबुद्धिवाद गणित को अपना आदर्श मानता है। इसलिए उसके अनुसार गणित की भांति ज्ञान का सर्वव्यापी स्थिर तथा अनिवार्य होना अति आवश्यक है।
7. इन्द्रियानुभववाद में वस्तु संवादिता या वस्तु अनुरूपता को यथार्थता की कसौटी माना गया है।

   किन्तु तर्कबुद्धिवाद आत्मसंगीत या सामंजस्य (Harmany) को वैधता की कसौटी मानता है।

8. अनुभववाद की परिणति संदेहवाद है। जबकि बुद्धिवाद की परिणति अंधविश्वास व रूढ़िवाद में होती है।

विकास– पाश्चात्य दर्शन में वैसे तो इन्द्रियानुभववाद का विशुद्ध रूप से सर्वप्रथम विवेचन लॉक ने किया है तथापि उनसे पूर्व के कुछ प्राचीन विचारकों में हम इन्द्रियानुभव का प्रारम्भिक रूप पाते है।

प्राचीन इन्द्रियानुभववादियों में प्रोटोगोरज व उनके द्वारा स्थापित सोफिस्ट सम्प्रदाय और जेनों तथा उनके स्टोईक सम्प्रदाय की मुख्य रूप से गणना की जाती है।

आधुनिक युग में– कुछ सीमा तक (यद्यपि पूर्ण रूप से नहीं) वेकन तथा हाव्स को इन्द्रियानुभववादी कहा जाता है। वस्तुतः इन्द्रियानुभववाद का पूर्ण विकसित रूप लांक बर्कले ह्यूम की दार्शनिक रचनाओं में मिलता है। मिल के दर्शन में इनका चरमोत्कर्ष रूप मिलता है।

19वीं और बीसवीं शताब्दियों में भौतिकी के विकास से इन्द्रियानुभववाद को काफी बल मिला। व्यवहारिकतावाद, वास्तववाद तथा प्रत्ययवाद अंततः इन्द्रियानुभववाद पर ही निर्भर है।

लॉक

तर्कबुद्धिवादियों के अनुसार मानव मस्तिष्क में जन्म से ही कुछ प्रत्यय होते है, जिन्हें जन्मजात अथवा सहज प्रत्यय कहा जाता है और उन्हीं से हमारे समस्त प्रकार के ज्ञान का विकास मानसिक क्रिया द्वारा होता रहता है।

लॉक सर्वप्रथम इन सहज प्रत्ययों का खंडन करते है। see B.T. Singh & C.D. Sharma.

सहज प्रत्ययों के खंडन के बाल लॉक यह बताने की चेष्टा की है कि– हमारे मन या तर्क बुद्धि में विचार या प्रत्यय कहां से आते है? आप की मान्यता है कि कोई भी प्रत्यय सहज अथवा अंतः प्रसूत वहीं है। सभी प्रत्यय इन्द्रियों के द्वारा बाहर से आते है। –मन कोरे कागज

बाह्य पदार्थो का अनुभव इन्द्रिय संवेदनों द्वारा होता है अर्थात संवेदन बाह्य जगत के ज्ञान के स्त्रोत है। संवेदन से लाभ का तात्पर्य प्रत्यक्ष (Perception) है। ज्ञान का दूसरा स्त्रोत अनुचिंतन है। इसके द्वारा हमें मन की दशाओं को ज्ञान होता है।

निष्कर्षतः लांक के अनुसार संवेदन और अनुचिंतन ज्ञान के दो स्त्रोत है।

हम मनन या अनुचिंतन करना कब प्रारम्भ करते है?

लॉक का उत्तर है–"जब संवेदन हमारे लिए अनुचिंतन की सामग्री उपस्थिति करते है। जो कभी संवेदन रूप में या इन्द्रिय ज्ञान में नहीं रहा वह मन अथवा तर्कबुद्धि में भी नहीं होगा। तकबुद्धि का प्रत्तेक प्रत्यय या विचार इन्द्रियानुभव से प्राप्त किया जाता है।"

प्रत्ययों की प्राप्ति में मन या बुद्धि सर्वथा निष्क्रिय रहती है। किन्तु यह केवल सरल प्रत्ययों के विषय में ही सत्य है।

लॉक ने दो प्रकार के प्रत्ययों को माना है। सरल प्रत्यय(Simple Idea) और जटिल प्रत्यय(Complex Idea)। जटिल प्रत्ययों का निर्माण सरल प्रत्ययों के याग तथा मिश्रण से होता है। इन प्रत्ययों के निर्माण में मन सक्रिय रहता है।

लेकिन ज्ञान के मूलतत्व सरल प्रत्यय ही है और उन्ही का उदगम ज्ञान का वास्तविक उदगम है। अन्य शब्दों में ज्ञान की उत्पत्ति का तात्पर्य– सरल प्रत्ययों की उत्पत्ति है। केवल अनुभव से ही सरल प्रत्ययों का ज्ञान होता है। लॉक का यही मत इनको इन्द्रियानुभववादी बनाता है।

लॉक के अनुसार ये सरल प्रत्यय कई प्रकार के होते है। जैसे रंग, रूप, विस्तार, आकार, गति, स्थिरता, ठोसपन आदि। इनमें से कुछ प्रत्ययों की प्राप्ति एक इन्द्रिय द्वारा होती है तथा कुछ की कई इन्द्रियों द्वारा होती है। जैसे ठोसपन प्रत्यय त्वेचंद्रिय से होता है। जबकि विस्तार आकार गति आदि के प्रत्यय त्वचा एवं चक्षु दोनों से प्राप्त होते है।

सुख–दुख शक्ति आदि का प्रत्यय संवेदन तथा अनुचिंतन दोनों से प्राप्त होते है।

गुण–

पदार्थो में एक ऐसी शक्ति होती है। जिसके द्वारा वे प्रत्यय उत्पन्न करते है। इस शक्ति को गुण (Quality)

लॉक के अनुसार– गुण दो प्रकार के होते है–

1. मूलगुण–(Primary Qualities)
2. गौणगुण–(Secendory Qualities)

1– मूलगुण वे होते है जो वस्तुतः पदार्थो में पाये जाते है और जो हममे अपने अनुरूप प्रत्यय उत्पन्न करते है। जैसे– ठोसपन, विस्तार, रूपरंग, आकार आदि। ये किसी अनुभवकर्ता पर निर्भर नहीं करते। अतः इनके सूचक प्रत्यय वस्तुओं के वास्तविक स्वरूप के द्योतक होते है। मूलगुणों के प्रत्यय वस्तु के अनुरूप धर्मो की वास्तविक अनुकृतियां या प्रतिरूप (Copy) होते है। लॉक के अनुसार मूल गुणों के दो कार्य है।

1. वे हमारी चेतना पर अपने समान अर्थात अपने प्रतिरूप प्रत्यय उत्पन्न करते है।

2. वे गौण गुणें के संवेदन उत्पन्न करते है।

2– गौण गुण–(Secondary Qualioties)– गौण गुण वे गुण है जो वास्तव में पदार्थो में विद्यमान नहीं रहते। प्रत्युत उनके मूल गुणों द्वारा अनुभव कर्त्ता के अंदर उत्पन्न संवेदन मात्र है। जैस रूप, रस, गंध आदि। ये गुण पदार्थो के वास्तविक गुणों से कोई समानता नहीं रखते।

प्रत्यय– सरल – व जटिल (As aabove)

जटिल प्रत्यय– लॉक के अनुसार जटिल प्रत्ययों का निर्माण –बुद्धि करती है और इसमें वह सक्रिय होती है। जलि प्रत्यय तीन प्रकार के होते है।

- प्रकार प्रत्यय – Ideas of Models
- द्रव्य प्रत्यय – Ideas of Substance
- सम्बंध प्रत्यय – Ideas of Reltiens.

1. प्रकार प्रत्यय–अमूर्त भावों के प्रत्यय पहली कोटि में आते है। जैसे–सौन्दर्य कृतज्ञता आदि के प्रत्यय।
2. सम्बंध प्रत्यय– सरल प्रत्ययों की तुलना करके– सम्बंध सूचक प्रत्ययों का निर्माण किया जाता है। कार्यकारण भाव निकटता दूरी बड़ाई, छोटाई आदि इसके उदाहरण है।
3. द्रव्य प्रत्यय– द्रव्य के प्रत्यय वे है जो गुणों के आश्रय को सूचित करते है। गुणों के आश्रय को ही द्रव्य कहा जाता है। लॉक ने तीन प्रकार के द्रव्यों का माना है।

- आत्मा
- जड़ द्रव्य
- ईश्वर द्रव्य

आत्मा मानसिक गुणों का भौतिक द्रव्य भौतिक गुणों का तथा ईश्वर सम्पूर्ण विश्व का आश्रय है।

लॉक– आत्मा तथा जड़ द्रव्य को तो स्वीकार करते है, लेकिन ईश्वर द्रव्य का खंडन करते है।

आपकी मान्यता है कि– हमें ईश्वर का साक्षात ज्ञान या इन्द्रियानुभव नहीं होता। केवल परोक्ष या असाक्षात ज्ञान है और हम उसके स्वरूप का यथार्थ ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकते।

आत्मा का हमें साक्षात या अपरोक्ष ज्ञान है तथा बाह्य पदार्थो का हमें इन्द्रियानुभव होता है।

ज्ञान के मूल स्त्रोत का विवेचन करने के बाद लॉक का दूसरा कार्य यह निर्णय करना है कि– ज्ञान का स्वरूप तथा उसकी सीमा क्या है? उल्लेखनीय है कि– लॉक के अनुसार– "हमारे ज्ञान के विषय हमारे प्रत्यय ही प्रत्ययों के अतिरिक्त किसी अन्य पदार्थ का साक्षात ज्ञान नहीं हुआ करता।"

लेकिन प्रत्यय मात्र को ज्ञान नहीं कहा जा सकता। वे तो ज्ञान के घटक है इन प्रत्ययों की पारस्परिक संगति (Agrement) और असंगति (Disagrement) के सम्बंध से ही ज्ञान की उत्पत्ति होती है। अतः जहाँ प्रत्ययों की संगति अथवा उनके मध्य असंगति का प्रत्यक्ष होता है। वहीं ज्ञान है। जहाँ इस प्रकार के प्रत्यक्ष का अभाव है वह ज्ञान नहीं है। कल्पना विश्वास आदि भले ही हो।

जहाँ तक ज्ञानके विस्तार का प्रश्न है लॉक का मत है कि– यह बहुत ही सीमित है। इन्द्रियों पर अवलम्बित है। इन्द्रियों द्वारा प्रत्यय अधिक नहीं हो सकते। अंतः ज्ञान का विस्तार भी सीमित है।

(2) जार्ज बर्कले–

बर्कले ज्ञानमीमांसा सम्बंधी विवेचन में लॉक के विचारों को और संगत तथा प्रष्ट बनाने का प्रयास किया है। आपके अनुसार– हमारा ज्ञान प्रत्ययों तक ही सीमित है। क्योंकि हम केवल प्रत्ययों का ही अनुभव करते है। अनुभव से जो उत्पन्न होता है उसे वे भी लॉक की भांति प्रत्यय कहते है।

लॉक ने इन्द्रियानुभविक प्रणाली के आधार पर ही सहज प्रत्ययों का खंडन किया था। बर्कले लॉक के इस खंडन का स्वागत करते है। किन्तु वे इसी प्रक्रिया को आगे बढ़ाते हुए। अमूर्त प्रत्ययों तथा जड़ द्रव्यों का भी निराकरण करते है। साथ ही बर्कले के लॉक द्वारा प्रतिपादित वस्तुओं के गुणों का द्विविध भेद स्वीकार नहीं है। आपकी मान्यता है कि मूल और गौण गुणों में कोई मौलिक भेद नहीं है और वस्तुओं के सभी गुण अनुभव सापेक्ष है क्योंकि अनुभव से पृथक करके उनका कोई अर्थ नहीं होता है।

इन खंडनों के बाद– बर्कले अपने महत्वपूर्ण सिद्धांत दृश्यते इतिवर्तते– का प्रतिपादन करते है।

लॉक ने माना था कि हमारे अनुभव के साक्षात विषय हमारे प्रत्यय है। वस्तुओं तक हमारी सीधी पहुंच नहीं हुआ करती। ये प्रत्यय वस्तुगत गुणों की अनुकृतियां हे। प्रत्यय गुणों से समानता रखते है। वे मानते थे कि गुण बाहर वस्तुओं में रहते है।

बर्कले भी लॉक के साथ यह मानते है कि हमारे अनुभव का विषय हमारे प्रत्यय है। प्रत्यय हमारे मन में रहते है। फिर यह मानने की क्या आवश्यकता है कि प्रत्ययों के अर्थात मन के बाहर वस्तुओं का एक सार है। जो अपने अनुरूप प्रत्यय हम में उत्पन्न करता है।

बर्कले ने जोर देकर कहा है कि– प्रत्यय ही साक्षात प्रत्यक्ष के विषय है। प्रत्यक्ष का विषय मन में साक्षात उपलबध होता है कि किसी प्रत्यय के द्वारा मन में उसका प्रतिनिधित्व होता है।

बर्कले के इस सिद्धांत को पुरोनिधानवाद(Presentationism) कहा जाता है। अब यहाँ प्रश्न उठता हे कि– क्या हम प्रत्ययों के अलावा किसी अन्य वस्तु को नहीं जानते। आपका कहना है कि प्रत्ययों के अलावा हमें अपनी आत्मा का भी ज्ञान होता है। जो प्रत्ययों का आश्रय तथा उनका अनुभवकर्ता है। आत्मा का हमें एक प्रकार का अंर्तबोध प्राप्त होता है।

दूसरा प्रश्न यह है कि– हमारे प्रत्यय कहाँ से आते हे। उनका कारण स्वंय आत्मा तथा बाह्य जगत नहीं हो सकता। क्योंकि जड़ पदार्थ चेतन प्रत्ययों को उत्पन्न नहीं कर सकते।

अतः मानना होगा कि प्रत्ययों के एक क्रम में उत्पन्न या प्रतीक होने का कारण परमात्मा या ईश्वर है। बर्कले ने ईश्वर को भी आत्मरूप माना है। यद्यपि वह अन्य आत्माओं से अधिक शक्तिशाली तथा ज्ञानवान है।

(3) ह्यूम– ज्ञान सिद्धांत

लॉक ने कहा था कि हमें साक्षात ज्ञान अपने प्रत्ययों का होता है। वस्तु जगत का नहीं। इससे बर्कले ने निष्कर्ष निकाला कि फिर वस्तु जगत को मानने की आवश्यकता नहीं है। बर्कले ने प्रत्ययों के अतिरिक्त आत्मा तथा ईश्वर की सत्ता को भी स्वीकार किया।

ह्यूम ने कहा कि– यदि अनुभव हमारे समक्ष केवल प्रत्यय जगत को उपस्थापित करता है और अनुभव ही एक मात्र प्रमाण है तो हमें ईश्वर तथा आत्माओं के ज्ञान का दावा करते रहने का कोई अधिकार नहीं है। अतः जड़ द्रव्य, ईश्वर और आत्मा को अस्तित्व मान्य नहीं है।

इस प्रकार ह्यूम इन्द्रियानुभववाद की संगत स्थापना में स्वंय संशयवादी हो जाते है। उनका संशयवाद लॉक के इन्द्रियानुभववाद का अनिवार्य परिणाम है।

ह्यूम की मान्यता है कि हम अपने मन के भीतर दो चीजें पाते है। संस्कार संवेदन (Impression) और प्रत्यय(Idea) दोनों में मुख्य भेद यह है कि– संवेदनों की तुलना में प्रत्यय क्षीण और निर्बल अनुकृति या प्रतिलिपि अथवा छाया मात्र होते है। जो वस्तुओं के इन्द्रियों

के सामने से हटाये जाने पर भी मन में रहते है। संगीत का यथार्थ में सुना जाना या किसी चित्र का देखा जाना संवेदन (संस्कार) है और बाद में उसकी स्मृति या कल्पना प्रत्यय है।

इस प्रकार हमारे समस्त अनुभवों की दोहरी प्रतीति हुआ करती है। एक संवेदन के रूप में और दूसरी प्रत्ययों के रूप में।

सारांशतः लॉक के इस सिद्धांत को कि– केवल इन्द्रिय द्वारा जो उपलब्धि होती है, उसी पर हमारा सारा ज्ञान आधारित है। लेकर आगे बढ़ते है तो फिर उन्हें सभी ज्ञान के विषय में संशय होने लगा यहाँ तक कि संवेदन के विषय में भी वे संदेह प्रगट करने लगे। आत्मा के अस्तित्व तक का उन्होंने ने निषेधकर दिया। अंततोगत्वा ह्यूम का इन्द्रियानुभववाद संशयवाद में परिणत हो गया। इसीलिए ह्यूम के संशयात्मक निष्कर्ष को लॉक के इन्द्रियानुभववाद का तार्किक परिणाम कहा गया है।

संशय या संदेहवाद (ह्यूम)

वह सिद्धांत जो वस्तुओं के अस्तित्व या उनकी ज्ञेयता के विषय में कोई निश्चित निर्णय देने से इंकार करें संशयवाद कहलाता है।

ह्यूम को समसामयिक समीक्षक संशयवादी कहने में हिचकिचाहट महसूस करते है। इसका कारण यह है कि– स्वंय ह्यूम ने अपने विषय में लिखा है कि वे संशयवादी नहीं थे। यहाँ दो बाते विचारणीय है।

ह्यूम मानते थे कि संवेदन या प्रत्यक्ष और प्रत्यय पर आधारित उनका इन्द्रियानुभववाद सत्य है। उन्होंने यह भी माना कि साहचर्य नियम को स्वीकार करना चाहिए। साथ ही वे यह भी मानते थे कि रूढ़ि या प्रथाओं (Customs and Usage) और कल्पना से इस प्रकार का ज्ञान प्राप्त हो सकता है जिसे जीवनयापन में पर्याप्त समझा जाता है। अतः इस अर्थ में वे संशयवादी नहीं है।

परन्तु यहाँ भी उन्हें शुद्ध संशयवादी मानना उचित नहीं है। क्योंकि उनका मत है कि– यदि प्रकृति के संकेतों पर चले तो तर्क बुद्धि द्वारा स्थापित संशय छूट जाता है। अतः इस दृष्टिकोण से ह्यूम को संशयवादी न कहकर अपने युग का समीक्षक कहना चाहिए। कुछ देव रूप में उन्होंने प्रति प्रज्ञावाद–(Anti-Intettectualism) का नारा उठाया है किन्तु उनका यह पक्ष पुष्ट नहीं हो सका है। इसलिए उन्हें लोग संशयवादी के रूप में ही मानते चले आये है।

ह्यूम का संशयवादी पक्ष निम्न है– ह्यूम का मत है कि– मानव ज्ञान को दो श्रेणियों में रख्खा जा सकता है।

1. प्रत्ययों के पारस्परिक सम्बंध (Relationship of Idea)
2. वस्तुओं पर तथ्यों का संसार– ह्यूम का मत है कि प्रथम श्रेणी के विषयों का सर्वव्यापी और अनिवार्य तथा असंदिग्ध ज्ञान सम्भव है। क्योंकि उसमें प्रत्ययों का विश्लेषण करके उनके गुणार्थ में जो नीहित रहता है उसे स्पष्ट किया जाता है। इस क्षेत्र का अध्ययन गणित करता है। अतः गणित से प्राप्त ज्ञान के विषय में ह्यूम संशयवादी नहीं थे। दो+दो का योग चार होता है। इसमें कोई संशय नहीं हो सकता।

किन्तु वस्तु जगत के विषय में हमारा ज्ञान इतना निश्चित और असंदिग्ध कभी नहीं हो सकता। कुछ लोगों की मान्यता है कि– कार्य–कारण सिद्धांत के आधार पर कुछ वस्तुओं के अनुभव से ही सभी के विषय में अर्थात सर्वव्यापी निष्कर्ष की स्थापना की जा सकती है।

इसके जवाब में ह्यूम का कहना है कि– कार्यकारण सिद्धांत अनुभव से सिद्ध नहीं है। आपने कार्य कारण सम्बंध का श्लिेषण करके बतलाया कि अनुभव के द्वारा हमें इनके मध्य के अनिवार्य सम्बंध का ज्ञान नहीं हो पाता। अनुभव के द्वारा हमें केवल इतना ज्ञान होता है कि– दो घटनाओं के मध्य इस प्रकार का सम्बंध है कि एक के बाद दूसरी घटना होती है। इन दोनों घटनाओं में कोई अनिवार्य सम्बंध अंर्तनिहित नहीं है। इस अनिवार्य सम्बंध की संवेदना हमें कभी नहीं प्राप्त होती है।

अतः इस कार्यकारण सिद्धांत के नियम के आधार पर निष्कर्ष निकालना प्रमाण संगत नहीं हे। अतः वस्तु जगत के सम्बंध में अनिवार्य एवं सर्वव्यापी कथन सम्भव नहीं है।

संक्षेप में अनुभव मानसिक दशाओं अर्थात संवेदनों का प्रत्ययों का होता है। वस्तुतः अनुभव प्रसमाण्यता (Probability) तक ही सीमित है। वस्तु जगत के विषय में वह कभी प्रमाण सिद्ध ज्ञान या जानकारी देने में सफल नहीं हो सकता। अतः निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि– तर्कबुद्धि मूलक मनोविज्ञान, तर्कबुद्धि मूलक विश्वविज्ञान और तर्कबुद्धि मूलक ईश्वर मीमांसा– शास्त्रों का विज्ञानों के रूप में असम्भव है। यहीं ह्यूम का संशयवाद है।

हयातव्य यह है कि– ह्यूम का संशयवाद वास्तववादी (Realism) है। वे केवल इस बात पर बल देना चाहते है कि निश्चित और सर्वव्यापी ज्ञान की प्राप्ति में न तो तर्कबुद्धि समर्थ है और न अनुभव ही। यदि अनुभव ही ज्ञान प्राप्ति का एक मात्र साधन है तो निश्चित रूप से यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती। परन्तु ह्यूम के अनुसार ज्ञान प्राप्ति के अन्य मार्ग भी है। अंतः प्रज्ञा और निदर्शनात्मक प्रणाली(Demonatrative Method) के आधार पर गणित में निश्चित और अनिवार्य ज्ञान की उपलब्धि हो सकती है।

इस प्रकार लॉक के प्रत्यय प्रतिनिधानवाद का पर्यावसान ह्यूम के संश्यवाद में हुआ। केवल प्रत्ययों के ज्ञान का अर्थ मात्र यह नहीं होता कि– हमें वस्तुओं का यथार्थ ज्ञान नहीं

होता। प्रत्युत यह भी है कि हमें आवश्यक सम्बंधो का भी ज्ञान नहीं होता। हम प्रत्ययों का अनुभव पृथक–पृथक करते है।

अतः ह्यूम का कहना है कि– अनुभव जगत के सभी पदार्थ एक दूसरे से असम्बद्ध है। इसलिए आवश्यक तथा अनिवार्य सम्बंधो का अन्वेषण करने वाला भौतिकी भी सम्भाव्य सत्यों को ही प्राप्त कर सकता है। निश्चित तथा असंदिग्ध सत्यों का नहीं।

मूल्यांकन

उपरोक्त विवेचन से मात्र यही बात सिद्ध होती है कि हमारा ज्ञान बहुत कुछ अंशो में अनुभव सापेक्ष है। किन्तु इससे यह कदापि सिद्ध नहीं होता कि हमें अनुभव निर्पेक्ष या इन्द्रियातीत वस्तु का ज्ञान हो ही नहीं सकता। हमारा अनुभव मात्र संवेदनों अथवा प्रत्यक्ष तक ही सीमित नहीं है। गणित के बहुत से नियम बिना प्रत्यक्ष के केवल चिंतन के आधार पर सिद्ध हो जाते है। कलात्मक सौन्दर्य की अनुभूति सदाचार की अनुभूति तथा धार्मिक अनुभूति आदि में हमे कुछ ऐसे तथ्यों की उपलब्धि होती है जो असंदिग्ध तथा निश्चित प्रतीत होते है।

इसके बावजूद भी संदेहवाद का अपना महत्व है। संश्य व्यर्थ नहीं हुआ करता। तथ्यों की गवेषणा में उसका भी अपना मूल्य है। ह्यूम के संशय ने दर्शन को एक नयी दिशा प्रदान की है। कान्ट ने यह महसूस किया है कि ह्यूम का सारा संशय उनकी प्रतिज्ञाओं अथवा आधार वाक्यों के कारण है। अतः उनकी परीक्षा करनी चाहिए। कान्ट ने स्वंय लिखा है कि–" मैं इमानदारी पूर्वक मानता हूं कि डेविड ह्यूम की शिक्षा का कुछ वर्ष पूर्व मैने जो अनुशीलन किया उसने मेरी रूढ़िवादी निद्रा को भंग कर दिया और मेरी दार्शनिक गवेषणाओं को एक बिल्कुल नयी दिशा प्रदान किया।"

निःसंदेह कान्ट ने ह्यूम के आधारवाक्यों की परीक्षा से दर्शन के कुछ बहुत ही महत्वपूर्ण सिद्धांतों की खोज की।

मूल अथवा परम तत्वों का ज्ञान प्राप्त करने में हमे कठिनाईयों के कारण। दर्शन एक मोड़ ले लेता हे और उसे कुछ नये तत्वों की उपलब्धि हो जाती है। लेकिन एकांतिक संशय में मनुष्य का मन सदैव के लिए टिका नहीं रह सकता। वह उससे विद्रोह करके नवीन स्थापनायें उपस्थित करता है और इसी प्रकार दर्शन की प्रगति होती रहती है।

जो लोग यह दावा करते है कि हमारा ज्ञान संशयात्मक है इसलिए सत्य की खोज करना व्यर्थ है। वे अपने कथन की निरर्थकता को नहीं समझते। यदि सभी ज्ञान संशयात्मक है तो स्वंय संशय का ज्ञान भी तो सभी ज्ञान के अंर्तगत है। अतः संशयवाद भी संशय से ग्रस्त हो जाता है। और उसे ठीक नहीं माना जा सकता। इस प्रकार की धारणा

से संशयवाद का स्वंय संशयवाद से खंडन हो जाता है। अतः एकांत्रिक संशयवाद सम्भव नहीं।

विशेष– पाश्चात्य इन्द्रियानुभववाद की भांति केवल इन्द्रियानुभव अर्थात प्रत्यक्ष मात्र को प्रमाण मानने वाला केवल एक ही दर्शन है। वह है चावकि– यह प्रमाण के अन्य साधनों, अनुमान शब्द उपमान अर्थानुपर्पत्र तथा अनुपलब्धि को नहीं मानता।

इन्द्रियानुभववाद का मूल्यांकन

इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि ज्ञान की प्राप्ति में अनुभव का विशेष योगदान है किन्तु मात्र अनुभव को ही ज्ञान का साधन मानना भारी भूल है। इसलिए इस मत में अनेकों त्रुटिया पायी जाती है। जिनका विवरण निम्नलिखित है।

1. इन्द्रियानुभववाद की सबसे बड़ी कमजोरी यह है कि यह मन या बुद्धि को निष्क्रिय मानता है। लॉक ने मस्तिष्क को कोरा कागज या खाली टोकरी बताया है। किन्तु ऐसा नहीं है। जब किसी टोकरी या बाक्स में वस्तुओं को रख्खा जाता है तो टोकरी अथवा संदूक उन वस्तुओं के स्वरूप पर कोई प्रभाव नहीं डालती। मन के विषय में इस प्रकार का कथन मनौवैज्ञानिक सत्य का विरोधी है।

आधुनिक मनोविज्ञान बतलाता है कि मन और बाह्य पर्यावरण के मध्य क्रिया प्रतिक्रिया का सम्बंध है। मन पर्यावरण को प्रभावित करता है और स्वंय को उससे प्रभावित करता है और इन्ही पारस्परिक प्रभावों के फलस्वरूप प्रत्ययों की उत्पत्ति होती है। अतः हमारा मन प्रत्ययों के ग्रहण में शुरू से ही सक्रिय रहता है।

2. लॉक बर्कले ह्यूम सभी का मत है कि प्रत्यय ज्ञान से भिन्न है और प्रत्यय को ज्ञान नहीं कहा जा सकता।

किन्तु वास्वत में प्रत्यय और ज्ञान साथ होते है तथा प्रत्यय एक निर्णय के रूप में रहता है। जो ज्ञान का ही एक रूप है। अतः प्रत्यय को ही ज्ञान मानना चाहिए। उदाहरणार्थ जब किसी व्यक्ति के मन में किसी गाय का प्रत्यय रहता है तो वह यह भी जानता है कि गाय काली है या नहीं।

अतः प्रत्यय तथा ज्ञान दोनों एक ही है।

3. लॉक ने प्रत्ययों को पदार्थ से भिन्न माना है और आप का कहना है कि प्रत्यय हमारे मन में रहते है और ये बाह्य वस्तुओं की अनुकृतियां होते रहते है। इस कथन से दो निष्कर्ष निकलते हैः–

क. बाह्य जगत की सत्ता समाप्त हो जाती है। जैसी कि बर्कले की मान्यता है।

ख. दूसरे यह कि– यथार्थ तथा अयथार्थ ज्ञान में कोई अंतर नहीं रह जाता है। क्योंकि इन दोनों प्रकार के ज्ञानों की उत्पत्ति प्रत्ययों से ही होती है और हम प्रत्ययों के अलावा किसी वस्तु को जानते ही नहीं।

इस प्रकार प्रत्यय और पदार्थ को भिन्न मानने से लॉक का मत जिस ज्ञान मीमांसीय द्वैत से ग्रसित हुआ, उसका निराकरण वे नहीं कर पाये।

4. इन्द्रियानुभववाद भी तर्कबुद्धिवाद की भांति एकांगी सिद्धांत है। क्योंकि तर्कबुद्धिवाद ज्ञान के सर्वव्यापक तत्व की व्याख्या तो कर पाते है किन्तु वे ज्ञान की यथार्थता तथा नवीनता की व्याख्या नहीं कर सके। क्योंकि यथार्थ तथा नवीन ज्ञान की उपलब्धि अनुभव के द्वारा ही सम्भव है।

इसी प्रकार अनुभव यथार्थता और नवीनता की व्याख्या तो कर पाता है लेकिन ज्ञान के सर्वव्यापकतत्व की व्याख्या नहीं कर पाया है। क्योंकि ह्यूम ने सिद्ध किया है कि ज्ञान का सर्वव्यापक तत्व अनुभव से प्राप्त नहीं हो सकता। अतः हमें सर्वव्यापी तथा अनिवार्य ज्ञान होता ही नहीं।

5. इन्द्रियानुभववाद आत्मघाती है। यह अपना खंडन स्वंय कर लेता है। क्योंकि इन्द्रियानुभववाद एक सिद्धांत है कोइ पदार्थ विशेष नहीं जिसका इन्द्रियों के द्वारा अनुभव हो सके। यदि इन्द्रियानुभववाद का इन्द्रियों द्वारा अनुभव नहीं हो सकता तो इसका ज्ञान भी नहीं हो सकता क्योंकि इस सिद्धांत के अनुसार इन्द्रियानुभवहीन ज्ञान का एक मात्र साधन है।
6. इन्द्रियानुभववाद मानता है कि सर्वप्रथम संवेदन असम्बद्ध रहते है और बाद में मन उन्हें सम्बद्ध कर लेता है। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से यह कहना सत्य नहीं है क्योंकि प्रत्यक्ष संवेदनाओं का योग नहीं प्रत्युत एक पूर्ण इकाई है।
7. इन्द्रियानुभववाद का तार्किक परिणाम संशयवाद है।
8. लॉक सहज प्रत्ययों का खंडन करने में भी पूर्णतयः सफल नहीं हो पाये है। आधुनिक मनोविज्ञान मानता है कि मन के अंदर अनेक इच्छायें विचार, राग, द्वैष आदि अचेतन अवस्था में विद्यमान रहते है तथा उचित अवसर पर ही उनकी चेतना होती है।

निष्कर्षतः इन्द्रियानुभववाद सत की खोज में निकले थे किन्तु उसकी खोज करते–करते एक वियावान जंगल में जा पहुंचे जहाँ से निकलना सम्भव न हो सका और अपने आप को खो बैठे। कान्ट ने देखा कि– जिस मार्ग पर इन्द्रियानुभववादी चले थे उसका परिणाम यहीं होना था। अतः उन्होंने तर्कबुद्धिवाद और इन्द्रियावाद के समन्वय से एक नवीन सिवतं स्थापित किया कि ज्ञानोत्पत्ति में अनुभव तथा बुद्धि दोनों का योग होता है।

————————————————————